

जय गुरु हीरा

श्री महावीराय नमः
श्री कुशलरत्नगजेन्द्रगणिभ्यो नमः
नाणस्स सव्वस्स पगासणाए
(ज्ञान समस्त द्रव्यों का प्रकाशक है)

जय गुरु मान

जैन धर्म प्रथमा

तृतीय कक्षा



अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रधान कार्यालय :

सामायिक स्वाध्याय भवन
प्लॉट नं. 2, नेहरू पार्क, जोधपुर-342003 (राज.)

फोन : 0291-2630490, 2636763, 2624891

email: shikshanboardjodhpur@gmail.com

website : www.jainratnaboard.com

सूत्र विभाग-

प्रतिक्रमण - एक सामान्य परिचय

अपने स्वीकृत व्रतों में जो कोई खलना या दोष लगे हों, उनकी शुद्धि करने की क्रिया प्रतिक्रमण है अर्थात् अतिक्रमण से लौटकर पुनः व्रत में आना ही प्रतिक्रमण है।

जिस प्रकार पैर में काँटा लगने से गति मन्द पड़ जाती है। गति को तीव्रता देने के लिए काँटे को निकालना आवश्यक है, उसी प्रकार ग्रहण किये गये व्रतों में जो कोई अतिक्रमण रूप दोष लगे हैं, उनकी शुद्धि व निराकरण के लिए प्रतिक्रमण आवश्यक है। इससे व्रत पालन में तेजस्विता आती है। पाप-शल्य को निकालने के लिए प्रतिक्रमण एक अमोघ साधन है।

प्रतिक्रमण का मूल नाम आवश्यक सूत्र है। आवश्यक के छः अंग हैं- 1. सामायिक 2. चउवीसत्थव 3. वंदना 4. प्रतिक्रमण 5. कायोत्सर्ग और 6. प्रत्याख्यान।

ज्ञान, दर्शन, चारित्राचारित्र व तप पर लगे अतिचारों की शुद्धि करना ही प्रतिक्रमण का मूल उद्देश्य है।



आवश्यक सूत्र (प्रतिक्रमण सूत्र)

1. इच्छामि णं भंते का पाठ

इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाएसमाणे देवसियं¹ पडिक्कमणं ठाएमि देवसिय नाण दंसण चरित्ताचरित्त तव अइयार चिंतणत्थं करेमि काउस्सगं।

2. इच्छामि ठामि का पाठ

इच्छामि ठामि काउस्सगं² जो मे देवसिओ अइयारो, कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मगो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ, अणायारो, अणिच्छियव्वो, असावगपाउगो, नाणे तह दंसणे, चरित्ताचरित्ते, सुए सामाइए, तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं, चउण्हं सिक्खावयाणं, बारसविहस्स सावगधम्मस्स, जं खंडियं जं विराहियं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।।

3. आगमे तिविहे का पाठ

आगमे तिविहे पण्णत्ते तं जहा- सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे, इस तरह तीन प्रकार के आगम रूप ज्ञान के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- जं, वाइद्धं, वच्चाभेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्टुदिण्णं, दुट्टुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ,

1 जहाँ-जहाँ देवसिय, देवसिओ, देवसियं शब्द आवे वहाँ-वहाँ पर प्रतिदिन, सायंकाल देवसिय आदि शब्द ही प्रयोग में लेना तथा प्रातःकाल में राइ, पक्खी के दिन 'पक्खी', चौमासी के दिन 'चौमासी' और संवत्सरी के दिन 'संवत्सरी' बोलें।

2 काउस्सग करने से पहले 'इच्छामि ठामि काउस्सगं' बोलें। काउस्सग में 'इच्छामि आलोउं' बोलें तथा अन्य समयों में प्रकट में 'इच्छामि पडिक्कमिउं' बोलें।

असज्जाइए सज्जायं, सज्जाइए न सज्जायं, भणता, गुणता, विचारता ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषों की अविनय आशातना की हो तो (इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो) तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।।

4. दर्शन सम्यक्त्व का पाठ

अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।

जिण पण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥1॥

परमत्थ संथवो वा, सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा वावि ।

वावण्ण कुदंसण वज्जणा, य सम्मत्त सदहणा ॥2॥

इअ सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंड पसंसा, परपासंड संथवो।

इस प्रकार श्री समकित रत्न पदार्थ के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. श्री जिन वचन में शंका की हो, 2. परदर्शन की आकांक्षा की हो, 3. धर्म के फल में संदेह किया हो, 4. पर पाखण्डी की प्रशंसा की हो, 5. पर पाखण्डी का परिचय किया हो और मेरे सम्यक्त्व रूप रत्न पर मिथ्यात्व रूपी रज मेल लगा हो। (इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो) तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।।

बारह स्थूल

(1) पहला स्थूल प्राणातिपात-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउं- 1. रोषवश गाढ़ा बंधन बांधा हो, 2. गाढ़ा घाव घाला हो, 3. अवयव (चामादि) का छेद किया हो, 4. अधिक भार भरा हो, 5. भक्त-पाणी (भोजन-पानी) का विच्छेद किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस संबंधी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(2) दूजा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. सहसाकार से किसी के प्रति कूड़ा आल (झूठा दोष) दिया हो, 2. एकांत में गुप्त बातचीत करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाया हो, 3. अपनी स्त्री का मर्म प्रकाशित किया हो*, 4. मृषा उपदेश दिया हो, 5. कूड़ा-लेख लिखा हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(3) तीजा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. चोर की चुराई हुई वस्तु ली हो, 2. चोर को सहायता दी हो, 3. राज्य के विरुद्ध काम किया हो, 4. कूड़ा तोल कूड़ा माप किया हो, 5. वस्तु में भेल संभेल किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(4) चौथा स्थूल स्वदार सन्तोष परदार* विवर्जन रूप मैथुन विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. इत्तरियपरिग्गहिया से गमन किया हो, 2. अपरिग्गहिया से गमन किया हो, 3. अनंग क्रीड़ा

* स्त्रियाँ- 'अपने स्वरूप का मर्म प्रकाशित किया हो', ऐसा बोलें तथा अविवाहित- 'स्त्री-पुरुष का मर्म प्रकाशित किया हो, ऐसा बोलें।

* स्त्रियाँ 'स्वपति सन्तोष परपुरुष' बोलें। इसी प्रकार इत्तरियपरिग्गहिया तथा अपरिग्गहिया के स्थान पर स्त्रियों को 'इत्तरिपरिग्गहिय' तथा 'अपरिग्गहिय' बोलना चाहिए तथा जिनके कुशील सेवन का जीवन भर के लिए त्याग है, उन्हें 'स्वदार सन्तोष परदार विवर्जन रूप' शब्द नहीं बोलने चाहिए।

की हो, 4. पराये का विवाह नाता कराया हो, 5. काम भोग की तीव्र अभिलाषा की हो- इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(5) पाँचवाँ स्थूल परिग्रह विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. खेत- वत्थु का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 2. हिरण्य- सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. धन-धान्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. दोपद-चौपद का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 5. कुविय का परिमाण अतिक्रमण किया हो, इन अतिचारों में मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(6) छट्टा दिशिग्रह के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. ऊँची, 2. नीची, 3. तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. क्षेत्र बढ़ाया हो, 5. क्षेत्र का परिमाण भूल जाने से, पंथ का संदेह पड़ने पर आगे चला हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(7) सातवाँ उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. पचक्खाण उपरान्त सचित्त का आहार किया हो, 2. सचित्त प्रतिबद्ध का आहार किया हो, 3. अपक्व का आहार किया हो, 4. दुपक्व का आहार किया हो, 5. तुच्छौषधि का आहार किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पन्द्रह कर्मादान* जो श्रावक-श्राविका को जानने योग्य हैं, किन्तु आचरण करने योग्य नहीं, उनके विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. इंगालकम्मे, 2. वणकम्मे, 3. साडीकम्मे, 4. भाडीकम्मे, 5. फोडीकम्मे, 6. दंतवाणिज्जे, 7. लक्खवाणिज्जे, 8. रसवाणिज्जे, 9. केसवाणिज्जे, 10. विसवाणिज्जे, 11. जंतपीलणकम्मे, 12. निलंछणकम्मे, 13. दवग्गिदावणया, 14. सर दह तलाय सोसणया, 15. असई जण पोसणया, इन इतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(8) आठवाँ अनर्थदण्ड- विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. कामविकार पैदा करने वाली कथा की हो, 2. भण्ड-कुचेष्टा की हो, 3. मुखरी वचन बोला हो, 4. अधिकरण* जोड़ रखा हो, 5. उपभोग परिभोग अधिक बढ़ाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(9) नवमाँ सामायिक व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. मन, 2. वचन, 3. काय के अशुभ योग प्रवर्तये हों, 4. सामायिक की स्मृति न रखी हो, 5. समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पाली हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(10) दसवाँ देसावगासिक व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. नियमित सीमा के बाहर की वस्तु मँगवाई हो, 2. भिजवाई हो, 3. शब्द करके चेताया हो, 4. रूप दिखा करके अपने भाव प्रकट किये हों, 5. कंकर आदि फेंक कर दूसरे को बुलाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

* कर्मादान- अधिक हिंसा वाले धन्धों से आजीविका चलाना कर्मादान है अथवा जिन संसाधनों से कर्मों का निरन्तर बन्ध होता हो, उन्हें कर्मादान कहते हैं।

* अधिकरण- हिंसाकारी शस्त्र यानी हिंसा के साधन।

(11) ग्यारहवाँ प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. पौषध में शय्या संथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो, 2. प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो, 3. उच्चार पासवण की भूमि को न देखी हो अथवा अच्छी तरह से न देखी हो, 4. पूँजी न हो या अच्छी तरह से न पूँजी हो, 5. उपवास युक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, (आवश्यक कार्य हेतु जाते समय आवस्सही-आवस्सही तथा वापस आते समय निस्सही-निस्सही न कहा हो) इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(12) बारहवाँ अतिथि-संविभाग व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. अचित्त वस्तु सचित्त पर रखी हो, 2. अचित्त वस्तु सचित्त से ढाँकी हो, 3. साधुओं को भिक्षा देने के समय को टाल कर भावना भाई हो, 4. आप सूझता होते हुए भी दूसरों से दान दिलाया हो, 5. मत्सर (ईर्ष्या) भाव से दान दिया हो, इन अतिचारों में मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पाठ - 18

संलेखना के पाँच अतिचार का पाठ

संलेखना के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. इहलोगासंसप्पओगे, 2. परलोगासंसप्पओगे, 3. जीवियासंसप्पओगे, 4. मरणासंसप्पओगे, 5. कामभोगासंसप्पओगे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पाठ - 19

99 अतिचारों का (समुच्चय का) पाठ

इस प्रकार 14 ज्ञान के, 5 समकित (दर्शन) के, 60 बारह व्रतों के, 15 कर्मादान के, 5 संलेखणा (तप) के, इन 99 अतिचारों में से किसी भी अतिचार को जानते, अजानते, मन, वचन, काय से सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पाठ - 20

अठारह पापस्थान का पाठ

अठारह पापस्थान आलोउं- 1. प्राणातिपात, 2. मृषावाद, 3. अदत्तादान, 4. मैथुन, 5. परिग्रह, 6. क्रोध, 7. मान, 8. माया, 9. लोभ, 10. राग, 11. द्वेष, 12. कलह, 13. अभ्याख्यान, 14. पैशुन्य, 15. परपरिवाद, 16. रति-अरति, 17. माया-मृषावाद, 18. मिथ्यादर्शनशल्य, इन 18 पापस्थानों में से किसी का सेवन किया हो, सेवन कराया हो, सेवन करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पाठ - 21

इच्छामि खमासमणो का पाठ

इच्छामि खमासमणो! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए अणुजाणह मे मिउग्गहं, निसीहि, अहो, कायं काय संफासं खमणिज्जो भे! किलामो अप्पकिलंताणं बहु सुभेणं भे! दिवसो वइक्कंतो जत्ता भे जवणिज्जं च भे खामेमि खमासमणो, देवसियं वइक्कमं आवस्सियाए पडिक्कमामि खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए तित्तिसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए, मण-दुक्कडाए, वय-दुक्कडाए काय-दुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सब्बकालियाए,

सव्वमिच्छोवयाराए, सव्व धम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स खमासमणो, पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।



तत्त्व विभाग -

पच्चीस बोल एवं उनके श्रैद्धों की परिभाषाएँ

1. पहले बोले गति चार- गति का अर्थ है- गमन करना अथवा चलना। संसारी जीवों के एक भव को छोड़कर दूसरे भव में जाने को 'गति' कहते हैं।
 - (I) नरकगति- जहाँ पर जीव अपने द्वारा संचित अशुभ कर्मों का आसाता रूप भयंकर फल अधिक भोगता हो, उसे 'नरकगति' कहते हैं।
 - (II) तिर्यञ्च गति- जिन जीवों का शरीर प्रायः तिरछा-टेढ़ा-मेढ़ा होता है, उन जीवों की गति को 'तिर्यञ्च गति' कहते हैं।
जिस गति में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक पाँचों ही जाति के जीव पाये जाते हों, उसे भी 'तिर्यञ्च गति' कहते हैं।
 - (III) मनुष्य गति- जिन जीवों में हेय, ज्ञेय, उपादेय के बारे में चिन्तन मनन करने की शक्ति हो, जिस गति में आत्मा पर लगे सभी कर्मों को तप-संयम के द्वारा क्षय किया जा सकता हो, उसे 'मनुष्य गति' कहते हैं।
 - (IV) देवगति- जहाँ पर जीव अपने किये हुए कर्मों का साता रूप फल अधिक भोगते हैं तथा अनेक प्रकार की दिव्य भौतिक ऋद्धियों को प्राप्त करते हैं, उसे 'देव गति' कहते हैं।
2. दूसरे बोले जाति पाँच- इन्द्रियों के आधार पर जीवों के बनाये हुए समूह को 'जाति' कहते हैं।
 - (I) एकेन्द्रिय- जिनके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय ही हो, ऐसे जीवों के समूह को 'एकेन्द्रिय' जाति कहते हैं। एकेन्द्रिय में पृथ्वी, अप् (पानी), तैजस (अग्नि), वायु और वनस्पतिकाय के सभी जीवों का समावेश हो जाता है, क्योंकि इन सबमें स्पर्शन इन्द्रिय की समानता है।
 - (II) बेइन्द्रिय- जिनके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियाँ हों, ऐसे जीवों के समूह को 'बेइन्द्रिय' जाति कहते हैं। जैसे- कृमि, लट, शंख, सीप, नारू, अलसिया आदि।
 - (III) तेइन्द्रिय- जिनके स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीनों इन्द्रियाँ हो ऐसे जीवों के समूह को 'तेइन्द्रिय' जाति कहते हैं। जैसे- चींटी, खटमल, जूँ, लीख, इली, कुंथुआ, मकोड़े, चाचड़, गजाइ आदि।
 - (IV) चउरिन्द्रिय- जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चारों इन्द्रियाँ हो, उन जीवों के समूह को 'चउरिन्द्रिय' जाति कहते हैं। जैसे- मक्खी, मच्छर, बिच्छू, टीड, पतंगे, भँवरा, कसारी आदि।

(V) **पंचेन्द्रिय-** जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाँचों इन्द्रियाँ हो, ऐसे जीवों के समूह को 'पंचेन्द्रिय' जाति कहते हैं। जैसे- पशु, पक्षी, मछली, सर्प, मनुष्य, नारक, देवता आदि।

3. तीसरे बोले काय छह - शरीर के आधार पर जीवों के बनाये हुये समूह को 'काय' कहते हैं।

- (I) **पृथ्वीकाय-** पृथ्वीरूप ही जिन जीवों का शरीर है, उनकी काय को 'पृथ्वीकाय' कहते हैं। जैसे- सोना, चाँदी, शीशा, लोहा, ताम्बा, कोयला, कंकर, गीली मिट्टी आदि।
- (II) **अप्काय-** पानी रूप ही जिन जीवों का शरीर है, उनकी काय को 'अप्काय' कहते हैं। जैसे- कुएँ, तालाब, बावड़ी, नदी, नलकूप, ओस, बरसात आदि का पानी।
- (III) **तेउकाय-** अग्नि रूप ही जिन जीवों का शरीर है, उनकी काय को 'तेउकाय' कहते हैं। जैसे- विद्युत, सेल, चूल्हे आदि की अग्नि।
- (IV) **वायुकाय-** वायु रूप ही जिन जीवों का शरीर है, उनकी काय को 'वायुकाय' कहते हैं। जैसे- उक्कलिया वायु, मण्डलिया वायु, घन वायु, तनवायु तथा अन्य सभी प्रकार की हवा।
- (V) **वनस्पतिकाय-** वनस्पति रूप ही जिन जीवों का शरीर है, उनकी काय को 'वनस्पतिकाय' कहते हैं। जैसे- लीलोती, लीलन, फूलण आदि।
- (VI) **त्रसकाय-** हलन-चलन करने वाले जीवों के शरीर को 'त्रसकाय' कहते हैं। अथवा सुख पाने व दुःख से बचने के लिये जो विशेष प्रयत्न कर सकें, उन्हें भी त्रस कहते हैं।

4. चौथे बोले इन्द्रिय पाँच- संसारी जीवों के ज्ञान प्राप्ति के साधन को 'इन्द्रिय' कहते हैं।

- (I) **श्रोत्रेन्द्रिय-** जीव जिसके द्वारा जीव, अजीव और मिश्र शब्दों को ग्रहण करके अथवा सुनकर के ज्ञान प्राप्त करता है, उसे 'श्रोत्रेन्द्रिय' कहते हैं।
- (II) **चक्षु इन्द्रिय-** जिसके द्वारा जीव रूप अर्थात्- काला, नीला, लाल, पीला और सफेद वर्ण को ग्रहण कर ज्ञान प्राप्त करता है, उसे 'चक्षु इन्द्रिय' कहते हैं।
- (III) **घ्राणेन्द्रिय-** जीव जिसके द्वारा सुगंध व दुर्गन्ध को ग्रहण कर ज्ञान प्राप्त करता है, उसे 'घ्राणेन्द्रिय' कहते हैं।
- (IV) **रसनेन्द्रिय-** जिसके द्वारा जीव तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा, इन पाँच प्रकार के रस को ग्रहण करता है, उसे 'रसनेन्द्रिय' कहते हैं।
- (V) **स्पर्शनेन्द्रिय-** जिसके द्वारा जीव पदार्थ (पुद्गल) में रहे हुए खुरदरा, कोमल, हल्का, भारी, ठण्डा, गर्म और लुखा, चिकना, इन आठ प्रकार के स्पर्श को ग्रहण करता है, उसे 'स्पर्शनेन्द्रिय' कहते हैं।

5. **पाँचवें बोले पर्याप्ति छह-** पर्याप्ति: नाम शक्तिः। अर्थात्- परिणमन करने की जीव की शक्ति को 'पर्याप्ति' कहते हैं। वह शक्ति विशेष की पूर्णता जिससे जीव पुद्गल को ग्रहण करके उन्हें आहार, शरीर, इन्द्रियादि रूपों में परिणत करता है, उसे 'पर्याप्ति' कहते हैं।

- (I) **आहार पर्याप्ति-** आहार के पुद्गलों को ग्रहण करके खल व रस के रूप में परिणत करने की जीव की शक्ति विशेष को 'आहार पर्याप्ति' कहते हैं। खल का अर्थ है- सार रहित भाग और रस का अर्थ है- सार भाग।
- (II) **शरीर पर्याप्ति-** रस रूप में परिणत पुद्गलों को सप्त धातु रूप में परिणत करने की जीव की शक्ति विशेष को 'शरीर पर्याप्ति' कहते हैं। जैसे औदारिक शरीर में सप्त धातुएँ- रस, रक्त, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा और वीर्य । इसी प्रकार वैक्रिय व आहारक शरीर में उन-उन के योग्य धातु रूप में परिणमन करने की शक्ति समझना चाहिए।।
- (III) **इन्द्रिय पर्याप्ति-** शरीर पर्याप्ति द्वारा परिणत सप्त धातुओं से कान, आँख, नासिका आदि इन्द्रियों का निर्माण करने एवं उस रूप में परिणत करने की जीव की शक्ति विशेष को 'इन्द्रिय पर्याप्ति' कहते हैं।
- (IV) **श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति-** जीव श्वासोच्छ्वास योग्य सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण कर श्वास एवं उच्छ्वास रूप में परिणत करे, उस शक्ति विशेष को 'श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति' कहते हैं।
- (V) **भाषा पर्याप्ति-** जीव भाषा योग्य सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण कर बोलने की योग्यता प्राप्त करे, वचन रूप में परिणत करे, अर्थात्- वचन बोले, उस शक्ति विशेष को 'भाषा पर्याप्ति' कहते हैं।
- (VI) **मन-पर्याप्ति-** मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके चिन्तन-मनन रूप में परिणत करने की जीव की शक्ति विशेष को 'मन-पर्याप्ति' कहते हैं।

6. छठे बोले प्राण दस- जिसके द्वारा शरीरधारी जीव जीवन धारण करे अथवा जिनके सहारे जीव जीवित रहे, उसे 'प्राण' कहते हैं।

- (I) **श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण-** कानों के द्वारा शब्दों को ग्रहण करने की अथवा सुनने की शक्ति विशेष को 'श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण' कहते हैं।
- (II) **चक्षु इन्द्रिय बल प्राण-** आँखों के द्वारा देखने की शक्ति विशेष को 'चक्षु इन्द्रिय बल प्राण' कहते हैं।
- (III) **घ्राणेन्द्रिय बल प्राण-** नासिका के द्वारा गंध ग्रहण करने की शक्ति विशेष को 'घ्राणेन्द्रिय बल प्राण' कहते हैं।
- (IV) **रसनेन्द्रिय बल प्राण-** रसना के द्वारा खट्टा-मीठा आदि स्वाद को ग्रहण करने की शक्ति विशेष को 'रसनेन्द्रिय बल प्राण' कहते हैं।
- (V) **स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण-** पदार्थ में रहे हुए ठंडे, गर्म आदि आठ प्रकार के स्पर्शों को ग्रहण करने की शक्ति विशेष को 'स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण' कहते हैं।
- (VI) **मनो बल प्राण-** द्रव्य मन की सहायता से किसी भी प्रकार का चिन्तन-मनन करने की शक्ति विशेष को 'मनोबल प्राण' कहते हैं।
- (VII) **वचन बल प्राण-** भाषा वर्गणा के पुद्गलों की सहायता से वचन बोलने की शक्ति-विशेष को 'वचन बल प्राण' कहते हैं।

- (VIII) **काय बल प्राण-** औदारिक, वैक्रिय आदि शरीर के माध्यम से चलने-फिरने, उठने-बैठने की शक्ति विशेष को 'काय बल प्राण' कहते हैं।
- (IX) **श्वासोच्छ्वास बल प्राण-** श्वासोच्छ्वास वर्गणा के पुद्गलों की सहायता से श्वास लेने और बाहर निकालने की शक्ति विशेष को 'श्वासोच्छ्वास बल प्राण' कहते हैं।
- (X) **आयुष्य बल प्राण-** एक निश्चित समय तक निश्चित भव नरकादि में जीवित रहने की शक्ति विशेष को 'आयुष्य बल प्राण' कहते हैं।
7. **सातवें बोले शरीर पाँच- जीव के क्रिया करने के साधन को 'शरीर' कहते हैं। अथवा संसारी जीव जिसमें रहकर अपने शुभाशुभ कर्मों का भोग करे, उसे भी 'शरीर' कहते हैं।**
- (I) **औदारिक शरीर-** जो रक्त, माँस, मज्जा, अस्थि आदि स्थूल पुद्गलों से बना हो, उसे 'औदारिक शरीर' कहते हैं। जो शरीर उदार अर्थात् प्रधान हो एवं जो स्थूल पुद्गलों वाला हो, उसे 'औदारिक शरीर' कहते हैं। प्राण निकलने के बाद जिसका कलेवर (शव) पड़ा रहे, उसे भी 'औदारिक शरीर' कहते हैं।
- (II) **वैक्रिय शरीर-** जिस शरीर में विविध अथवा विशेष प्रकार की क्रियाएँ होती हों, उसे वैक्रिय शरीर कहते हैं। जैसे- एक रूप होकर अनेक रूप धारण करना, छोटा-बड़ा शरीर बनाना, दृश्य-अदृश्य रूप बनाना आदि।
- (III) **आहारक शरीर-** यह शरीर आहारक लब्धि धारक चौदह पूर्वधारी प्रमत्त अणुगार में आहारक लब्धि के प्रयोग के समय पाया जाता है। यह शरीर साधियों में नहीं होता। चौदह पूर्वधारी मुनि तीर्थंकर की ऋद्धि देखने अथवा चौदह पूर्वों को चितारते समय स्वयं को शंका हो जाने पर अथवा वादी के प्रश्न पूछने पर स्वयं का उपयोग नहीं लगने पर अथवा जीवों की दया पालने, हिंसा-निवारण करने हेतु आहारक लब्धि से अपने शरीर में से एक हाथ का पुतला निकालकर समाधान प्राप्त करते हैं, उसे 'आहारक शरीर' कहते हैं।
- (IV) **तैजस शरीर-** यह शरीर तेजोमय पुद्गलों का होता है। यह खाये हुए आहार के पुद्गलों को पचाने का काम करता है। शरीर में विद्यमान उष्णता व जठराग्नि भी इसी के कारण प्रकट होती है। विशेष साधना या घोर तपस्या द्वारा व्यक्ति विशेष को तेजोलब्धि के रूप में भी यह शरीर उत्पन्न होता है।
- (V) **कर्मण शरीर-** कर्मण वर्गणाओं का वह समूह जो आत्मा के साथ एक ही क्षेत्र में दूध और पानी की तरह मिलकर स्वयं भी व्यवस्थित रहता है तथा अन्य कर्मों एवं उनकी प्रकृतियों को भी व्यवस्थित रखता है, उसे 'कर्मण शरीर' कहते हैं। तैजस और कर्मण शरीर सभी संसारी जीवों में पाया जाता है।
8. **आठवें बोले योग पन्द्रह- मन, वचन और काय की प्रवृत्ति को 'योग' कहते हैं।**
- (I) **सत्य मनोयोग-** पदार्थ के यथार्थ स्वरूप का चिन्तन करना 'सत्य मनोयोग' है।
- (II) **असत्य मनोयोग-** जिस प्रकार का वस्तु का स्वरूप नहीं है, उस रूप में उसका विचार-चिन्तन करना 'असत्य मनोयोग' कहलाता है।
- (III) **मिश्र मनोयोग-** सत्य और असत्य से मिश्रित अर्थात् जिसमें कुछ भाग सत्य हो और कुछ भाग असत्य हो, इस प्रकार के विचार-चिन्तन को 'मिश्र मनोयोग' कहते हैं।

- (IV) **व्यवहार मनोयोग-** जो न तो सत्य हो और न ही असत्य हो, किन्तु फिर भी लोक-व्यवहार में उस रूप में प्रचलित हो, ऐसा विचार-चिन्तन करना 'व्यवहार मनोयोग' है। अथवा आमन्त्रण, आदेश, याचना, पृच्छा, प्ररूपणा आदि से सम्बन्धित विचार करना 'व्यवहार मनोयोग' है।
- (V) **सत्य भाषा, (VI) असत्य भाषा, (VII) मिश्र भाषा व (VIII) व्यवहार भाषा-** इनको भी मनोयोग की भांति समझ लेना चाहिये। अन्तर केवल इतना ही है कि मनोयोग में सच्चा, झूठा, मिश्र एवं व्यावहारिक चिन्तन है, जबकि वचन योग में सत्य-असत्य आदि बोलना है।
- (IX) **औदारिक काययोग-** शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के पश्चात् औदारिक शरीर से जो हलन-चलन आदि क्रिया होती है, उसे 'औदारिक काययोग' कहते हैं।
- (X) **औदारिक मिश्र काययोग-** मनुष्य, तिर्यचों में जब औदारिक शरीर के साथ अन्य शरीर की संयुक्त प्रवृत्ति होती है अथवा औदारिक शरीर की अपूर्णता में जो प्रवृत्ति होती है, उसे औदारिक मिश्र काय योग कहते हैं।
- (XI) **वैक्रिय काय योग-** देवों एवं नारकों में शरीर पर्याप्ति की पूर्णता के बाद और वैक्रिय लब्धि वाले मनुष्यों-तिर्यचों में लब्धि जन्य वैक्रिय शरीर बनने के बाद वैक्रिय शरीर की जो क्रिया होती है, वह 'वैक्रिय काययोग' है।
- (XII) **वैक्रिय मिश्र काययोग-** नारकी देवों में अपर्याप्त अवस्था में, उत्तर वैक्रिय अवस्था में तथा मनुष्य तिर्यच में वैक्रिय लब्धि प्रयोग के समय जो संयुक्त प्रवृत्ति होती है, उसे 'वैक्रिय मिश्र काययोग' कहते हैं।
- (XIII) **आहारक काययोग-** लब्धि द्वारा बनाये हुए पूर्ण आहारक शरीर से तीर्थंकरों के पास शंका निवारण हेतु गमनागमन आदि की जो क्रिया होती है, उसे 'आहारक काययोग' कहते हैं।
- (XIV) **आहारक मिश्र काययोग-** आहारक लब्धिवन्त अणुगार जब आहारक शरीर बनाते हैं, उस समय जब तक आहारक शरीर की शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो तब तक के अन्तर्मुहूर्त काल में होने वाली क्रिया को 'आहारक मिश्र काययोग' कहते हैं।
- (XV) **कर्मण काययोग-** कर्मण शरीर से जो क्रिया-व्यापार होता है, उसे 'कर्मण काययोग' कहते हैं।

9. नवें बोले उपयोग बारह- जीव जिस चेतना शक्ति के द्वारा वस्तु के सामान्य एवं विशेष रूप का ज्ञान करता है, उसे 'उपयोग' कहते हैं।

- (I) **मतिज्ञान-** सम्यग्दर्शन के साथ इन्द्रिय और मन की सहायता से रूपी अरूपी पदार्थों का सीमित मात्रा में जो विशेष बोध होता है, उसे 'मतिज्ञान' कहते हैं।
- (II) **श्रुतज्ञान-** सम्यग्दर्शन के साथ शब्द सुनकर, पढ़कर, चिन्तन-मनन कर अथवा संकेत से रूपी अरूपी पदार्थों का सीमित मात्रा में होने वाला ज्ञान 'श्रुतज्ञान' कहलाता है।
- (III) **अवधिज्ञान-** सम्यग्दर्शन के साथ इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना सीधे आत्मा से होने वाले रूपी पदार्थों के मर्यादित ज्ञान को 'अवधिज्ञान' कहते हैं।

- (IV) **मनः पर्यवज्ञान-** सम्यग्दर्शन के साथ इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना सीधे आत्मा से संज्ञी जीवों के मनोगत भावों को जानना 'मनः पर्यवज्ञान' है।
- (V) **केवलज्ञान-** सभी द्रव्यों की सभी पर्यायों को एक साथ सीधे आत्मा से परिपूर्ण रूप से प्रत्यक्ष जानना 'केवलज्ञान' है।
- (VI) **मति अज्ञान-** सम्यक् दर्शन के अभाव में मन और इन्द्रियों की सहायता से रूपी और अरूपी पदार्थों की सीमित रूप में जो जानकारी होती है, उसे 'मति अज्ञान' कहते हैं।
- (VII) **श्रुत अज्ञान-** सम्यक् दर्शन के अभाव में सुनने, पढ़ने और मनन करने से जीवों को जो रूपी और अरूपी पदार्थों की मर्यादित जानकारी होती है, उसे 'श्रुत अज्ञान' कहते हैं।
- (VIII) **विभंगज्ञान-** सम्यग् दर्शन के अभाव में सीधे आत्मा से होने वाली रूपी पदार्थों की मर्यादित जानकारी को 'विभंग ज्ञान' या 'अवधि अज्ञान' कहते हैं।
- (IX) **चक्षु दर्शन-** चक्षु इन्द्रिय की सहायता से जीवों को मतिज्ञान के पूर्व जो सामान्य बोध होता है अथवा अनुभूति होती है, उसे 'चक्षु दर्शन' कहते हैं।
- (X) **अचक्षु दर्शन-** चक्षु इन्द्रिय को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों और मन की सहायता से मति ज्ञान से पूर्व जो पदार्थों का अति सामान्य बोध होता है। वह 'अचक्षुदर्शन' कहलाता है। ये दोनों दर्शन मति श्रुत ज्ञान से पहले होते हैं।
- (XI) **अवधिदर्शन-** इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना मात्र आत्मा की शक्ति से मर्यादापूर्वक रूपी पदार्थों का अवधि ज्ञान से पूर्व सामान्य रूप से बोध होना 'अवधिदर्शन' कहलाता है।
- (XII) **केवल दर्शन-** त्रिकालवर्ती सभी द्रव्यों एवं उनकी सभी पर्यायों को सामान्य रूप से जानना 'केवल दर्शन' कहलाता है।

10. दसवें बोले कर्म आठ- कषाय और योग के निमित्त से आत्मा के साथ लगे हुए कार्मण पुद्गल स्कन्ध को 'कर्म' कहते हैं। जीव के द्वारा मिथ्यात्व आदि हेतुओं से जो क्रिया की जाती है, उसे भी 'कर्म' कहते हैं। कर्म आठ है:-

- (I) **ज्ञानावरणीय कर्म-** यह कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करता है। जिस प्रकार बादल सूर्य को आच्छादित करते हैं। इस कर्म के क्षय से अनन्त ज्ञान या केवल ज्ञान प्रकट होता है।
- (II) **दर्शनावरणीय कर्म-** यह कर्म आत्मा के दर्शन गुण को ढकता है। जिस प्रकार द्वारपाल राजा के दर्शनों में बाधक बनता है। उसी प्रकार यह वस्तु तत्त्व के सामान्यगुण को जानने में बाधक बनता है। दर्शनावरणीय का क्षय होने पर अनन्त दर्शन या केवल दर्शन का गुण प्रकट होता है।
- (III) **वेदनीय कर्म-** जिस कर्म के उदय से जीव साता-असाता रूप वेदनाजन्य अनुभूति करे उसे 'वेदनीय कर्म' कहते हैं। इस कर्म के क्षय से अव्याबाध सुख प्रकट होता है।
- (IV) **मोहनीय कर्म-** जिस कर्म के उदय से आत्मा मोहित बनकर स्व और पर का अथवा सत् असत् का अथवा हेय, ज्ञेय, उपादेय का भान भूल जाता है उसे 'मोहनीय कर्म' कहते हैं। इसके मुख्य दो भेद हैं- 1. दर्शन

मोहनीय और 2. चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय के क्षय से क्षायिक समकित और चारित्र मोहनीय के क्षय से अनन्त सुख या वीतरागता प्रकट होती है।

- (V) **आयुष्य कर्म**- जिस कर्म के उदय से जीव एक निश्चित भव में निश्चित समय तक रुका रहता है एवं जिसके समाप्त होने पर मरणावस्था को प्राप्त हो दूसरे भव में जन्म लेता है वह 'आयुष्य कर्म' कहलाता है। इसके क्षय होने पर अमरत्व गुण प्रकट होता है।
- (VI) **नाम कर्म**- जिस कर्म के उदय से जीव अनेक प्रकार के शरीर, गति, जाति, इन्द्रिय आदि को प्राप्त करता है, उसे 'नाम कर्म' कहते हैं। इस कर्म के क्षय से (अमूर्त्त) अरूपीपन की प्राप्ति होती है।
- (VII) **गोत्रकर्म**- जिस कर्म के उदय से जीव में उच्चता और नीचता के संस्कार हो अथवा ऊँच और नीच कुलों में जन्म लेना पड़े, उसे गोत्र कर्म कहते हैं। इस कर्म के क्षय से जीव अगुरु-लघु गुण को प्राप्त करता है। अगुरु-लघु से तात्पर्य है- न हल्का न भारी, न ऊँचा न नीचा, सम अवस्था में होता है।
- (VIII) **अंतराय कर्म**- जिस कर्म के उदय से जीव की दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य, ये पाँचों शक्तियाँ प्रभावित हो अथवा इनमें बाधा उत्पन्न हो, उसे 'अंतराय कर्म' कहते हैं। इस कर्म के क्षय से उपर्युक्त पाँचों शक्तियाँ अनन्त रूप में प्रकट होती हैं।

11. ग्यारहवें बोले गुणस्थान चौदह- मोह और योग के निमित्त से आत्म-विकास की बनने वाली तरतम अवस्थाओं को 'गुणस्थान' कहते हैं। जीव के ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि आत्मिक गुणों की न्यूनाधिक अवस्था को 'गुणस्थान' कहते हैं।

- (I) **मिथ्यात्व गुणस्थान**- देव, गुरु, धर्म और अपने आत्म-स्वरूप के बारे में यथार्थ श्रद्धान नहीं होना अर्थात् विपरीत श्रद्धान होना 'मिथ्यात्व गुणस्थान' है।
- (II) **सास्वादन गुणस्थान**- उपशम सम्यक्त्व से गिरती हुई अवस्था को 'सास्वादन गुणस्थान' कहते हैं।
- (III) **मिश्र मोहनीय गुणस्थान**- जब जीव देव, गुरु, धर्म तथा अपने आत्म-स्वरूप के बारे में सही निर्णय (श्रद्धान) नहीं कर पाता है, इनमें तटस्थ वृत्ति हो, उस अवस्था को 'मिश्र मोहनीय गुण-स्थान' कहते हैं। इसमें न तो जीव का न जन्म होता है, न मरण होता है, न आयुष्य-बन्ध होता है और न ही किसी लब्धि का प्रयोग होता है।
- (IV) **अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान**- दर्शन मोहनीय कर्म की तीन (मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय) तथा चारित्र मोहनीय की चार (अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ) इन सात प्रकृतियों का उपशम, क्षय या क्षयोपशम करके जीव सम्यग्दृष्टि बनता है।
- (V) **देशविरति श्रावक गुणस्थान**- जो सम्यग्दृष्टि जीव यथाशक्ति व्रत-नियम जैसे- अहिंसा, सत्य अचौर्य आदि बारह व्रतों को ग्रहण कर उनकी परिपालना करते हैं, उस अवस्था को 'देशविरति श्रावक गुणस्थान' कहते हैं।
- (VI) **प्रमादी साधु गुणस्थान**- जब साधक 18 पापों का अथवा सभी आश्रवों का तीन करण, तीन योग से जीवन पर्यन्त के लिए त्याग करके संयमी बन जाता है। पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति इन तेरह प्रकार के

चारित्र का पालन करता है। जब तक साधु में प्रमाद रहता है तब तक उसकी अवस्था को 'प्रमादी साधु गुणस्थान' कहते हैं।

- (VII) **अप्रमादी साधु गुणस्थान-** जब साधु-साध्वी स्वाध्याय-ध्यान, चिंतन-मनन आदि में विशेष रूप से लीन हो जाते हैं और पाँच प्रकार के प्रमाद से रहित होकर तेरह प्रकार के चारित्र का निरतिचार पालन करते हैं। उस अवस्था को 'अप्रमादी साधु गुणस्थान' कहते हैं।
- (VIII) **निवृत्ति बादर गुणस्थान-** निवृत्ति का अर्थ है- भिन्नता और बादर का अर्थ है- स्थूल कषाय। इस गुणस्थान में समान समय वाले जीवों के परिणामों में अन्तर होता है, तथा बादर कषाय विद्यमान रहती है, इसलिये इसे 'निवृत्ति बादर गुणस्थान' कहते हैं।
- (IX) **अनिवृत्ति बादर गुणस्थान-** अनिवृत्ति का अर्थ है- अभिन्नता। इस गुणस्थान के सम समयवर्ती जीवों के परिणामों में अभिन्नता होती है अर्थात् समानता होती है, तथा बादर कषाय भी विद्यमान रहती है, इसलिए इस गुणस्थान को 'अनिवृत्ति बादर गुणस्थान' कहते हैं।
- (X) **सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान-** जब आत्मा में मोहनीय कर्म की अट्टाइस प्रकृतियों में से मात्र सूक्ष्म कषाय अर्थात् संज्वलन लोभ का उदय शेष रह जाता है, बाकी प्रकृतियों का क्षय अथवा उपशम हो जाता है, उस अवस्था को 'सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान' कहते हैं।
- (XI) **उपशान्त मोहनीय गुणस्थान-** जब आत्मा में मोहकर्म बिल्कुल शान्त हो जाता है। अर्थात् किसी भी प्रकार से मोहकर्म की किसी भी प्रकृति का उदय नहीं रहता, अन्तर्मुहूर्त के लिए दब जाता है। उस अवस्था को 'उपशान्त मोहनीय गुणस्थान' कहते हैं।
- (XII) **क्षीण मोहनीय गुणस्थान-** जब मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय हो जाता है, उस अवस्था को 'क्षीण मोहनीय गुणस्थान' कहते हैं। इस अवस्था में पहुँचने पर जीव आगे जाकर निश्चित रूप से केवलज्ञान को प्राप्त करता है, गिरता नहीं है।
- (XIII) **सयोगी केवली गुणस्थान-** इस गुणस्थान को प्राप्त करते ही आत्मा में केवलज्ञान-केवलदर्शन की प्राप्ति हो जाती है। किन्तु मन, वचन और काय की प्रवृत्ति चालू रहने के कारण इसे 'सयोगी केवली गुणस्थान' कहते हैं। इस गुणस्थान वाले ही तीर्थंकर बनकर चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं, मोक्ष मार्ग का उपदेश देते हैं तथा सिद्धों का स्वरूप समझाते हैं।
- (XIV) **अयोगी केवली गुणस्थान-** इस गुणस्थान में मन, वचन और काय योग का क्रमशः पूर्णतया निरोध हो जाता है, इसलिये इसे 'अयोगी केवली गुणस्थान' कहते हैं। यहाँ से जीव सभी कर्मों से मुक्त होकर, एक समय की अविग्रह गति से मोक्ष में चला जाता है।

12. बारहवें बोले पाँच इन्द्रियों के 23 विषय ओर 240 विकार- इन्द्रियों के माध्यम से जीव जिन शब्द, रूप आदि को ग्रहण करता है, उसे 'विषय' कहते हैं।

विकार- ग्रहण किये गये विषयों को अच्छा-बुरा मानकर, उन पर राग-द्वेष करना 'विकार' कहलाता है।

13. तेरहवें बोले मिथ्यात्व के दस भेद- वस्तु के अयथार्थ श्रद्धान (पदार्थ जिस रूप में हैं, उसे उस रूप में नहीं मानकर विपरीत रूप में मानना) 'मिथ्यात्व' है।

- (I) **जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व-** जिसमें चेतना का गुण हो, जो उपयोग लक्षण वाला हो, जिसमें जानने देखने और अनुभव करने की शक्ति हो, वे जीव कहलाते हैं, किन्तु उनको जीव नहीं मानकर अजीव मान लेना, हमारी आत्मा को शरीर के समान नाशवान और क्षण भंगुर समझ लेना, एकेन्द्रिय आदि सूक्ष्म जीवों को अजीव मान लेना, 'जीव को अजीव श्रद्धेने रूप मिथ्यात्व' है।
- (II) **अजीव को जीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व-** जड़ पदार्थों को जिनमें चेतना, उपयोग आदि गुण नहीं हो, उन्हें जीव रूप मानना, अजीव को जीव श्रद्धेने रूप मिथ्यात्व है। जैसे शरीर, इन्द्रियाँ, मन एवं अष्टविध कर्म, ये सभी रूपी हैं, पुद्गल रूप हैं, सड़न, गलन, विध्वंसन स्वभाव वाले होने से जड़ हैं। शरीर आदि के विकास एवं विनाश में ही आत्मा का, आत्म-स्वरूप का विकास एवं विनाश समझ लेना भी 'अजीव को जीव श्रद्धेने रूप मिथ्यात्व' कहलाता है।
- (III) **धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व-** धर्म- अहिंसा, संयम एवं तप रूप होता है। वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना करना धर्म है। क्षमा, नम्रता, सरलता, निर्लोभता आदि दस लक्षणों को धारण करना धर्म है। इन सभी को धर्म न मानकर अधर्म मानना मिथ्यात्व है।
- (IV) **अधर्म को धर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व-** हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह आदि अठारह पापों का सेवन करना अधर्म है, पाप है। इन्हें धर्म रूप मानकर श्रद्धान करना भी मिथ्यात्व है। धर्म के नाम पर आडम्बर, प्रदर्शन एवं बड़े-बड़े समारोहों में होने वाले आरम्भ-सभारम्भ आदि पापकारी प्रवृत्तियों को भी धर्म मानना 'अधर्म को धर्म श्रद्धेने रूप मिथ्यात्व' कहलाता है।
- (V) **साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व-** वीतराग धर्म की पूर्ण निर्मल साधना करने वाले साधक को साधु कहते हैं। जो साधुत्व के गुणों अर्थात्- पाँच महाव्रत, पाँच समिति-तीन गुप्ति, पाँच आचार, पाँच इन्द्रिय दमन, नवबाड़ सहित ब्रह्मचर्य, बारह प्रकार का तप, सतरह प्रकार का संयम पालन करते हुए अप्रमत्त दशा में अर्थात् आत्मभाव में लीन रहते हैं, वे साधु कहलाते हैं। ऐसे वीतराग धर्म की साधना करने वाले, स्व-पर हित साधने वाले साधुओं को असाधु मानना, 'साधु को असाधु श्रद्धेने रूप मिथ्यात्व' कहलाता है।
- (VI) **असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व-** जो वीतराग मार्ग की साधना नहीं करते। त्याग मार्ग की आराधना नहीं करके भोग मार्ग पर लगे हैं। शरीर इन्द्रियों, मन एवं आत्मा पर जिनका विवेक पूर्वक संयम नहीं है। ऐसे भोगी, रागी, कपटी लोगों को उत्तम, मंगल एवं शरण रूप साधु मानना, 'असाधु को साधु श्रद्धेने रूप मिथ्यात्व' है।
- (VII) **संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व-** मिथ्या या असम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना करना, आरम्भ-परिग्रह का सेवन करना, पंचेन्द्रिय विषयों में आसक्त रहना, क्रोधादि कषायों का सेवन करना 'संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धेने रूप मिथ्यात्व' कहलाता है।
- (VIII) **मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व-** तत्त्वार्थ सूत्र के प्रथम अध्याय के प्रथम सूत्र में कहा है- 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' अर्थात्- सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र, ये तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग कहलाता है। इसी मार्ग पर चलकर जीव सभी दुःखों से, कर्मों से मुक्त हो सकते हैं। ऐसे सच्चे मार्ग को संसार बढ़ाने वाला, भव-भ्रमण करने वाला माने तो 'मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग श्रद्धेने रूप मिथ्यात्व' कहलाता है।

(IX) **आठ कर्मों से मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व-** जिन महापुरुषों ने विशिष्ट संवर व निर्जरा द्वारा समस्त कर्मों का अन्त कर दिया है। जिन्होंने ज्ञानावरणीय आदि द्रव्य कर्मों से, राग-द्वेषादि भाव कर्मों से सदैव के लिए मुक्त होकर केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्रकट कर लिया है। ऐसे अनन्त सिद्ध भगवान् को सरागी देवों के समान कर्म सहित समझ लेना, 'मुक्त को अमुक्त श्रद्धेने रूप मिथ्यात्व' कहलाता है।

(X) **आठ कर्मों से अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व-** जो आत्माएँ राग-द्वेषादि भाव कर्मों से, ज्ञानावरणीय आदि द्रव्य कर्मों से मुक्त नहीं हैं। जो देवी-देवता, जन्म-मरण के चक्र में उलझे हुए हैं। ऊँच-नीच की, यश-अपयश की कामना जिनके अन्तर में विद्यमान हैं। जो शरीर, संसार और कर्म से मुक्त नहीं हैं, ऐसे सरागी देवों को सिद्धों के समान मुक्त समझ लेना, आराध्य समझ लेना, 'अमुक्त को मुक्त श्रद्धेने रूप मिथ्यात्व' कहलाता है।

14. चौदहवें बोले छोटी नव तत्त्व के 115 भेद- संसार में जितने भी पदार्थ हैं, उनके सारभूत स्वरूप को अथवा पदार्थ के भाव को 'तत्त्व' कहते हैं।

(I) **जीव तत्त्व-** जिसमें जानने, देखने और अनुभव करने की शक्ति हो, जिसमें चेतना गुण हो, जो उपयोग लक्षण वाला हो, जो सुख-दुःख का, पाप-पुण्य का स्वयं कर्ता एवं भोक्ता हो, उसे जीव तत्त्व कहते हैं।

(II) **अजीव तत्त्व-** जो चेतना गुण से रहित हो, सड़न, गलन, विध्वंसन स्वभाव वाला हो, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श से युक्त हो अथवा इन वर्णादि से रहित होकर भी उपयोग लक्षण से हीन हो, जिसमें जड़त्व भाव हो, ऐसे पदार्थों को 'अजीव तत्त्व' कहते हैं।

(III) **पुण्य तत्त्व-** जो आत्मा को पवित्र करे अर्थात् अशुभ से बचाये, शुभ में लगाये। जिसको बांधना दुर्लभ किन्तु भोगना सुलभ हो, जिसका फल मीठा अर्थात् अनुकूल प्रतीत होता हो, उसे 'पुण्य तत्त्व' कहते हैं। यह तत्त्व धर्म की साधना और आराधना के लिए सहायक होने से उपादेय माना गया है।

(IV) **पाप तत्त्व-** जो आत्मा को नीचे गिराये, नरक आदि दुर्गतियों में ले जाये, आत्मा को मलिन करे, कर्मों के बोझ से भारी बनाये, उसे 'पाप तत्त्व' कहते हैं।

(V) **आश्रव तत्त्व-** जिन कारणों से आत्मा पर कर्म पुद्गलों का आगमन होता है, उन कारणों को आश्रव तत्त्व कहते हैं। जीव रूपी तालाब में शुभ, अशुभ रूप जल, राग-द्वेष आदि आश्रव द्वार रूपी नाली से आता रहता है। आश्रव से आत्मा मलिन बनता है।

(VI) **संवर तत्त्व-** जिन कारणों से आत्मा पर आने वाले कर्म पुद्गलों को रोका जा सके, उन्हें 'संवर तत्त्व' कहते हैं। जीव रूपी तालाब में आश्रव रूपी नालों के द्वारा आते हुए कर्म रूपी पानी को संवर रूपी पाटिया से रोके, उसे 'संवर तत्त्व' कहते हैं।

(VII) **निर्जरा तत्त्व-** जिन क्रियाओं से आत्मा के साथ बंधे हुए कर्म पुद्गलों को अंशतः अलग या क्षीण किया जाता है, उन्हें 'निर्जरा तत्त्व' कहते हैं। निर्जरा आत्मा को अपने शुद्ध स्वरूप में लाने की आध्यात्मिक क्रिया है। इसके द्वारा आत्मा के साथ एक क्षेत्र में विद्यमान कर्मों को अलग कर दिया जाता है।

(VIII) **बन्ध तत्त्व-** जिन कारणों से कर्म पुद्गल आत्मा पर आकर चिपक जाते हैं, दूध और पानी की तरह एकमेक हो जाते हैं अथवा लोहपिण्ड और अग्नि की तरह सम्बद्ध हो जाते हैं, उन कारणों को 'बंध-तत्त्व' कहते हैं।

(IX) **मोक्ष तत्त्व-** सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है। आश्रवों को रोककर संवर और निर्जरा के द्वारा संचित कर्मों का जड़मूल से क्षय कर देना 'मोक्ष तत्त्व' कहलाता है।

15. **पन्द्रहवें बोले आत्मा आठ-** जो ज्ञान, दर्शन आदि पर्यायों में निरन्तर रमण करें, गमन करें, उसे 'आत्मा' कहते हैं।

(I) **द्रव्य आत्मा-** असंख्यात प्रदेशों का ऐसा अखण्ड और अमूर्त स्वरूप जो ज्ञान-दर्शन आदि गुणों से युक्त है, शाश्वत है, उसे 'द्रव्य आत्मा' कहते हैं। संसारी एवं सिद्ध सभी में यह आत्मा पायी जाती है।

(II) **कषाय आत्मा-** क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों की तीव्रता के आधार पर आत्मा को 'कषाय आत्मा' कहा जाता है। जब तक कषायों का उदय रहता है तब तक यह आत्मा रहती है।

(III) **योग आत्मा-** जब आत्मा के साथ मन, वचन और काय की प्रवृत्ति विद्यमान रहती है तब योगों की प्रमुखता के आधार पर उसे 'योग आत्मा' कहते हैं। यह आत्मा तेरहवें गुणस्थान तक के सभी जीवों में पाई जाती है।

(IV) **उपयोग आत्मा-** जब आत्मा में जानने और देखने की प्रवृत्ति विशेष रूप से होती है, तब उस आत्मा को 'उपयोग आत्मा' कहा जाता है। यह आत्मा सिद्ध व संसारी सभी जीवों में पाई जाती है।

(V) **ज्ञान आत्मा-** जब आत्मा में नवतत्त्व और षट्द्रव्य का, देव-गुरु-धर्म और आत्म-स्वरूप का यथार्थ ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तब उसे 'ज्ञान आत्मा' कहते हैं। यह आत्मा सम्यग् दृष्टि जीवों में ही पाई जाती है, मिथ्यादृष्टियों में नहीं।

(VI) **दर्शन आत्मा-** आत्मा, शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि के द्वारा पदार्थों का जो सामान्य बोध प्राप्त करती है यह आत्मा सिद्ध और संसारी जीवों में पाई जाती है।

(VII) **चारित्र आत्मा-** जब आत्मा में त्याग-प्रत्याख्यान रूप विरति भाव तीन करण तीन योग से जीवन पर्यन्त के लिए प्रकट हो जाते हैं, तब उसे 'चारित्र आत्मा' कहते हैं। यह आत्मा छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक पाई जाती है।

(VIII) **वीर्य आत्मा-** जब आत्मा में दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य इन पाँच शक्तियों को प्रकट करने में पुरुषार्थ होता है, तब उसे 'वीर्य आत्मा' कहते हैं। यह आत्मा सभी संसारी जीवों में पाई जाती है। सिद्धों में नहीं।

16. **सोलहवें बोले दण्डक चौबीस-** अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल भोगने के स्थान को 'दण्डक' कहते हैं। दण्डक चौबीस प्रकार के होते हैं।

17. **सतरहवें बोले लेश्या छह-** जो शक्ति आने वाले कर्मों को आत्मा के साथ चिपका दे, उसे 'लेश्या' कहते हैं। यह शक्ति कषाय और योग से उत्पन्न होती है।

(I) **कृष्ण लेश्या-** जिन जीवों के परिणाम अत्यन्त क्रूर एवं निर्दयी होते हैं, जो तीव्र हिंसा, झूठ, चोरी आदि पाप प्रवृत्तियों में दिन-रात लगे रहते हैं। दूसरे लोगों को दुःखी करने में ही अपना सुख समझते हैं। ऐसे जीवों के परिणाम 'कृष्ण लेश्या' वाले कहलाते हैं।

- (II) **नील लेश्या-** जो जीव हिंसा, झूठ, चोरी आदि पाप प्रवृत्तियों में लगे रहते हैं। बहुत समझाने पर उन प्रवृत्तियों में थोड़ी कमी ला पाते हैं। जो धार्मिक भावना से कोसों दूर रहते हैं, ऐसे जीवों के परिणाम 'नील लेश्या' वाले होते हैं।
- (III) **कापोत लेश्या-** कापोत लेश्या वाला जीव आचरण में वक्र, कपटी, अपने दोषों को छिपाने वाला, दुर्वचन बोलने वाला, चोरी एवं द्वेष करने वाला होता है।
- (IV) **तेजो लेश्या-** तेजो लेश्या वाला जीव विनम्र, चपलता रहित, जितेन्द्रिय, अमायी, प्रियधर्मी, दृढधर्मी, पाप से डरने वाला एवं मोक्षपथगामी होता है।
- (V) **पद्म लेश्या-** पद्म लेश्या वाला अल्पक्रोधी, अल्पमानी, अल्पमायी, अल्पलोभी, प्रशान्तचित्त, आत्मदमी, जितेन्द्रिय एवं उपशांत होता है।
- (VI) **शुक्ल लेश्या-** शुक्ल लेशी जीव प्रायः आर्त एवं रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म एवं शुक्ल ध्यान में एकाग्रचित्त होता है।

18. अठारहवें बोले दृष्टि तीन- देव, गुरु, धर्म और आत्म-स्वरूप सम्बन्धी जो यथार्थ, अयथार्थ और मिश्रित श्रद्धान होता है, उसे भी 'दृष्टि' कहते हैं।

- (I) **सम्यग् दृष्टि-** सम्यग् का तात्पर्य है सही, सच्चा अथवा यथार्थ। दृष्टि का तात्पर्य है- देखना, अनुभूति करना, श्रद्धान करना। अर्थात् जीवादि नवतत्त्वों का एवं षट्द्रव्यों का जैसा स्वरूप वीतराग भगवन्तों ने आगम वाणी में कथन किया है, उसे उसी रूप में श्रद्धान करना, मानना 'सम्यक् दृष्टि' है।
- (II) **मिथ्या दृष्टि-** जीवादि नवतत्त्वों के स्वरूप के बारे में वास्तविक श्रद्धान न होना, विपरीत अथवा अयथार्थ श्रद्धान होना 'मिथ्या दृष्टि' है।
- (III) **मिश्र दृष्टि-** जो वीतराग और रागी का भेद नहीं कर पाते, मोक्ष मार्ग और संसार मार्ग की भिन्नता का भेद नहीं कर पाते, उन जीवों के सम्यक्त्व और मिथ्यात्व से मिश्रित परिणामों को अथवा इनमें तटस्थ वृत्ति को 'मिश्र दृष्टि' कहते हैं।

19. उन्नीसवें बोले ध्यान चार- मन, वचन और काय को किसी एक विषय पर एकाग्र करना अथवा केन्द्रित करना 'ध्यान' कहलाता है। अन्तर्मुहूर्त के लिए किसी एक विषय के बारे में एकाग्र होकर चिंता निरोध करना 'ध्यान' कहलाता है।

- (I) **आर्तध्यान-** आर्त का अर्थ है- पीड़ा अथवा वेदना। अनुकूलता में कमी होने पर तथा प्रतिकूलता आने पर अपने मन, वचन व शरीर को एकाग्र करके पीड़ा के कारणों पर विचार करते रहना 'आर्तध्यान' है।
- (II) **रौद्रध्यान-** रौद्र का अर्थ है- रुद्रभाव, क्रूरता के भाव, हिंसा के भाव। हिंसादि, दुष्ट आचरण का चिंतन करना, 'रौद्रध्यान' कहलाता है। हिंसादि विषयों का क्रूर परिणाम 'रौद्रध्यान' कहलाता है।
- (III) **धर्मध्यान-** आत्मा को शुद्ध बनाने वाले ध्यान को 'धर्मध्यान' कहते हैं। वीतराग देव की आज्ञा को सत्य मानकर तत्त्वों का चिन्तन करना, आत्म-स्वरूप का चिंतन करना आदि 'धर्मध्यान' कहलाता है।
- (IV) **शुक्लध्यान-** मन के परिणामों की स्थिरता एवं योगों का निरोध करना 'शुक्ल ध्यान' है। अथवा पर आलम्बन के बिना निर्मल आत्मस्वरूप का अखण्ड अनुभव 'शुक्लध्यान' है।

20. बीसवें बोले षट् द्रव्यों के तीस भेद- गुण और पर्यायों के समूह को द्रव्य कहते हैं। इस संसार में कुल छह द्रव्य हैं-

- (I) धर्मास्तिकाय- जीव और पुद्गल के हलन-चलन में उदासीन रूप में सहायक-निमित्त बनता है।
- (II) अधर्मास्तिकाय- जीव और पुद्गल के ठहरने-स्थिर होने में उदासीन रूप में निमित्त बनता है।
- (III) आकाशास्तिकाय- यह सभी द्रव्यों को अवगाहन- जगह देने में निमित्त बनता है।
- (IV) कालद्रव्य- यह द्रव्य अरूपी होने के साथ अप्रदेशी भी है। अढ़ाई द्वीप में वर्तन-परिवर्तन इसी द्रव्य के निमित्त से होते हैं।
- (V) जीवास्तिकाय- ज्ञान-दर्शन रूप उपयोग गुण इसका मुख्य लक्षण है।
- (VI) पुद्गलास्तिकाय- यह द्रव्य वर्ण-गन्ध, रस, स्पर्श से युक्त होने से रूपी है। सड़न-गलन-विध्वंसन इस द्रव्य का मुख्य गुण है।

21. इक्कीसवें बोले राशि दो- समूह को राशि कहते हैं। जीवों के समूह को 'जीव राशि' तथा अजीवों के समूह को 'अजीव राशि' कहते हैं।

22. बाईसवें बोले श्रावकजी के बारह व्रत- मैं अमुक पाप नहीं करूँगा। इस प्रकार हिंसादि का प्रत्याख्यान करना 'व्रत' कहलाता है।

23. तेईसवें बोले साधुजी के पाँच महाव्रत- हिंसादि सावद्य प्रवृत्तियों का तीन करण, तीन योग से जीवन पर्यन्त के लिये त्याग करना 'महाव्रत' कहलाता है।

24. चौबीसवें बोले भंग उनपचास- विकल्प रचना को 'भंग' कहते हैं। अथवा कोई भी व्रत-नियम, त्याग-प्रत्याख्यान जितने प्रकार के करण-योगों से ग्रहण किया जा सकता है, उन प्रकारों को 'भंग' कहते हैं।

25. पच्चीसवें बोले चारित्र पाँच- सभी पाप प्रवृत्तियों के त्याग को 'चारित्र' कहते हैं।

चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से होने वाले विरति रूप परिणाम को 'चारित्र' कहते हैं।

- (I) सामायिक चारित्र- राग-द्वेष रहित आत्मा के समतामूलक क्रियानुष्ठान को 'सामायिक चारित्र' कहते हैं।
- (II) छेदोपस्थापनीय चारित्र- यह चारित्र प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के शासनकाल में होता है। महाव्रतों में कोई दोष लगने पर अथवा बड़ी दीक्षा दिलाने पर पुनः महाव्रतों में आरोपित करना 'छेदोपस्थापनीय चारित्र' है।
- (III) परिहारविशुद्धि चारित्र- कर्मों का विशेष रूप से त्याग करने, अलग हटाने तथा आत्मा को शुद्ध बनाने हेतु नौ मुनि जिस चारित्र की एक साथ आराधना करते हैं। उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं। इसमें कम से कम 18 माह का समय लगता है। इस चारित्र की आराधना के लिये जघन्य कुछ कम दस पूर्व तथा उत्कृष्ट परिपूर्ण दस पूर्व का ज्ञान होना आवश्यक है।

- (IV) **सूक्ष्मसम्पराय चारित्र-** जिन अणुगारों में बादर कषाय का उदय बिल्कुल भी नहीं रहता तथा सूक्ष्म कषायों में भी मात्र संज्वलन लोभ कषाय का ही उदय शेष रहता हो, उन महापुरुषों के चारित्र की अवस्था को 'सूक्ष्म संपराय चारित्र' कहते हैं।
- (V) **यथाख्यात चारित्र-** राग-द्वेष, कषाय, मोह आदि के उदय से पूर्णतः मुक्त होकर तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा जो शुद्ध चारित्र का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है, उसे उसी रूप में आराधन करना, पालन करना 'यथाख्यात चारित्र' कहलाता है।



व्यवहार सम्यक्त्व के 67 बोल

(1) श्रद्धान-4, (2) लिंग-3, (3) विनय-10, (4) शुद्धि-3, (5) लक्षण-5, (6) दूषण-5, (7) भूषण-5, (8) प्रभावना-8, (9) आगार-6, (10) यतना-6, (11) भावना-6, (12) स्थानक-6.

(1) श्रद्धान-4 : तत्त्व श्रद्धा को जागृत करने तथा सुरक्षित रखने के उपायों को 'श्रद्धान' कहते हैं।

1. परमार्थ अर्थात् जीवादि नव तत्त्वों का परिचय प्राप्त करना।
2. परमार्थ अर्थात् जीवादि नव तत्त्वों के स्वरूप को भली प्रकार जानने वाले आचार्य आदि की सेवा करना।
3. जिन्होंने सम्यक्त्व का वमन कर दिया है, उन सत्-श्रद्धाभ्रष्ट पुरुषों की संगति नहीं करना।
4. कुदृष्टि अर्थात् कुदर्शनियों की संगति का त्याग करना।*

(2) लिंग-3 : श्रद्धावान् व्यक्ति की वह बाह्य रुचि जिससे आन्तरिक रुचि का ज्ञान होता हो, उसे 'लिंग' कहते हैं।

1. जैसे तरुण पुरुष राग रंग में विशेष अनुराग रखता है उसी प्रकार भव्य जीव शास्त्र श्रवण में अनुरक्त रहे।
2. जैसे तीन दिन का भूखा आदमी खीर खांड का भोजन रुचि सहित करता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी आदर सहित सुने।
3. जिस प्रकार अनपढ़ को पढ़ने की चाह रहती है और पढ़ने के अवसर मिलते ही हर्षित होता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी सुनकर हर्षित होवे।

(3) विनय-10 : श्रद्धा के कारण पैदा होने वाली हृदय की कोमल वृत्तियों को 'विनय' कहते हैं।

1. अरिहन्त भगवान् की विनय भक्ति करना।
2. सिद्ध भगवान् की विनय भक्ति करना।
3. आचार्य महाराज की विनय भक्ति करना।
4. उपाध्याय महाराज की विनय भक्ति करना।
5. स्थविर महाराज की विनय भक्ति करना।
6. कुल अर्थात् एक आचार्य के शिष्य समुदाय की विनय भक्ति करना।
7. गण अर्थात् अनेक आचार्यों के शिष्य समुदायों की विनय भक्ति करना।
8. चतुर्विध संघ की विनय भक्ति करना।
9. साधर्मी की विनय भक्ति करना।
10. क्रियावान की विनय भक्ति करना।

* कुदर्शनियों अर्थात् मिथ्यामतियों के प्रति भी हमारे मन में द्वेष, ईर्ष्या, घृणा की भावना नहीं आनी चाहिए। उनसे विशेष परिचय, संगति न करें ताकि श्रद्धा में कमजोरी न आवे।

(4) शुद्धि-3 : विकृत श्रद्धा के निराकरण के प्रयत्न को 'शुद्धि' कहते हैं।

1. **मनशुद्धि-** मन से वीतराग देव व सुगुरु का स्मरण, ध्यान व गुणगान करें, अन्य सरागी देव का नहीं करें।
2. **वचन-शुद्धि-** वाणी से वीतराग देव व सुगुरु का गुणगान करें, अन्य सरागी देव का नहीं करें।
3. **काय-शुद्धि-** काय से श्री वीतराग देव व सुगुरु को वन्दना-नमस्कार करें, अन्य सरागी देव को नहीं करें।

(5) लक्षण-5 : श्रद्धा होने पर जो गुण आवश्यक रूप से पाये जाने चाहिये, वे 'लक्षण' कहलाते हैं।

1. **सम-** अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय न होना 'सम' है।
2. **संवेग-** मोक्ष की तीव्र इच्छा 'संवेग' है।
3. **निर्वेद-** संसार से उदासीनता रूप वैराग्य भाव का होना 'निर्वेद' है।
4. **अनुकम्पा-** दुःखी जीवों के दुःखों को मिटाने की इच्छा अनुकम्पा है। द्रव्य और भाव के भेद से अनुकम्पा दो प्रकार की है। शक्तिपूर्वक दुःखी जीवों के दुःख दूर करना द्रव्य अनुकम्पा है। दुःखी को देखकर दया से हृदय कोमल हो जाना भाव 'अनुकम्पा' है।
5. **आस्था-** जिनेन्द्र भगवान् के फरमाये हुए सूक्ष्म, गूढ़, अतीन्द्रिय- धर्मास्तिकाय, आत्मा, परलोक आदि पर श्रद्धा करना 'आस्था' है।

(6) दूषण-5 : श्रद्धा के बीच होने वाले विकेषों को 'दूषण' कहते हैं।

1. **शंका-** तत्त्व के विषय में सन्देह-संशय करना 'शंका' है।
2. **कांक्षा-** अन्य तीर्थिकों के आडम्बर को देखकर उनकी चाह करना 'कांक्षा' है।
3. **वित्तिगिच्छा-** धार्मिक क्रिया के विषय में फल के प्रति संदेह करना व गुणियों के मलिन वेश को देखकर घृणा करना 'वित्तिगिच्छा' है।
4. **पर-पाखण्डी प्रशंसा-** सर्वज्ञ प्रणीत मत के सिवाय अन्य मतावलम्बियों की प्रशंसा करना 'पर-पाखण्डी प्रशंसा' है।
5. **पर-पाखण्डी संस्तव-** सर्वज्ञ प्रणीत मत के सिवाय अन्य मत वालों के साथ सहवास, संलाप आदि रूप में परिचय करना 'पर-पाखण्डी संस्तव' है।

(7) भूषण-5 : जिन प्रवृत्तियों से श्रद्धा में अधिक विशिष्टता आती हो, उन्हें 'भूषण' कहते हैं।

1. जिन शासन में निपुण व कुशल हों।
2. जिन शासन की प्रभावना करें अर्थात् जिन शासन के गुणों को दीपावें व सुसाधुओं की सेवा-भक्ति करें।
3. चार तीर्थ की सेवा करें।
4. शिथिल पुरुषों को जो धर्म में अस्थिर हों, उन्हें उपदेशादि द्वारा जिन धर्म में स्थिर करें व अन्य मतावलम्बियों को जिन धर्म की महिमा बतलाकर इसके मार्ग की ओर लगावें।
5. अरिहन्त, साधु तथा गुणी पुरुषों का आदर सत्कार करें और उनकी विनय भक्ति करें।

(8) प्रभावना-8 : जैन धर्म की उन्नति एवं प्रचार के लिए प्रयत्न करना 'प्रभावना' है और जैन धर्म की उन्नति करने वाला प्रभावक कहलाता है।

1. **प्रवचन प्रभावक-** जिस काल में जितने सूत्र उपलब्ध हों, उनका ज्ञान बढ़ाकर धर्म को (दीपावे) चमकावें।
2. **धर्मकथा प्रभावक-** धर्म कथा सुनाने में चतुर होकर धर्म को दीपावें।
3. **वादी प्रभावक-** प्रत्यक्ष हेतु दृष्टान्त पूर्वक अन्यमतियों से वाद करके धर्म को दीपाने में चतुर हों।
4. **नैमित्तिक प्रभावक-** निमित्त ज्ञान से भूत, भविष्य और वर्तमान काल की बात जानने वाला होकर धर्म को चमकाएँ।
5. **तपस्वी प्रभावक-** कठिन तपस्या करके धर्म की उन्नति करने वाले हों।
6. **विद्यावान् प्रभावक-** अनेक विद्याओं का जानकार होकर धर्म की उन्नति करें-चमकावें।
7. **प्रकट व्रताचारी-** प्रसिद्ध व्रत रूप चार स्कन्ध को धारण करने वाले हों। ब्रह्मचर्य व्रत रूप शील स्कन्ध, रात्रि चौविहार, हरी सब्जी का त्याग, सचित्त जल के त्याग रूप महान् व्रत जीवन पर्यन्त के लिये धारण करके धर्म (को दीपावें) उन्नति करें।
8. **कवि प्रभावक-** शास्त्र के अनुसार कविता रचकर धर्म की उन्नति करें।

(9) आगार-6 : व्रत अंगीकार करते समय रखी जाने वाली छूट को 'आगार' कहते हैं।

1. **राजाभियोग-** राजा की पराधीनता से यदि समकित्तधारी श्रावक को अनिच्छा पूर्वक अन्य तीर्थिक तथा उनके माने हुए देवादि को वन्दना नमस्कार करना पड़े तो श्रावक सम्यक्त्व व्रत का अतिक्रमण नहीं करता।
2. **गणाभियोग-** गण अर्थात् बहुजन समुदाय के आग्रह से अनिच्छा पूर्वक...
3. **बलाभियोग-** बलवान् पुरुष द्वारा विवश किये जाने पर अनिच्छा पूर्वक...
4. **देवाभियोग-** देवता द्वारा बाध्य किये जाने पर अनिच्छा पूर्वक...
5. **गुरु-निग्रह-** माता, पिता, गुरुजन आदि के आग्रह वश अनिच्छा पूर्वक...
6. **वृत्तिकान्तार-** अटवी (जंगल) में जिस प्रकार आजीविका प्राप्त करना कठिन है, उसी प्रकार क्षेत्र और काल यदि आजीविका के प्रतिकूल हो जाएँ और जीवन-निर्वाह होना कठिन हो जाए तब ऐसी दशा में अनिच्छापूर्वक अन्य तीर्थिक तथा उनके माने हुए देवादि को यदि वन्दना नमस्कार करना पड़े तो श्रावक सम्यक्त्व व्रत का अतिक्रमण नहीं करता।

(10) यतना-6 : सम्यक्त्व रूप अनमोल धन को मिथ्यात्व रूप चोरों से सुरक्षित रखने के प्रयत्न को 'यतना' कहते हैं।

1. **आलाप-** मिथ्यादृष्टि से बिना कारण न बोलें और सम्यग्दृष्टि से ज्ञान चर्चा के लिए बोलें।
2. **संलाप-** मिथ्यादृष्टि से विशेष भाषण न करें और सम्यग्दृष्टि से बार-बार चर्चा अवश्य करें।
3. **दान-** मिथ्यादृष्टि को गुरु बुद्धि से दान न दें, लेकिन अनुकम्पावश दान देने के लिए निषेध नहीं है। सम्यग्दृष्टि को गुरु बुद्धि से दान दें।
4. **मान-** सम्यग्दृष्टि का बहुत आदर-सम्मान करें, मिथ्यादृष्टि का नहीं।
5. **वन्दना-** सम्यग्दृष्टि को वन्दना करें। मिथ्यादृष्टि को नहीं।
6. **गुणग्राम-** सम्यक् दृष्टि के गुणों का वर्णन करें। मिथ्यादृष्टि का नहीं।

(11) भावना*–6 : विविध विचारों से समकित में दृढ़ होना 'भावना' है।

1. समकित, धर्म रूपी वृक्ष का मूल है।
2. समकित, धर्म रूपी नगर का दरवाजा है।
3. समकित, धर्म रूपी प्रासाद की नींव है।
4. समकित, धर्म रूपी आभूषणों की पेटी है।
5. समकित, धर्म रूपी वस्तुओं की दुकान है।
6. समकित, धर्म रूपी भोजन का थाल है।

(12) स्थानक-6 : धर्म की उत्पत्ति व धर्म में स्थिर होने में सहायक होने वाले स्थान को 'स्थानक' कहते हैं।

1. जीव चेतना लक्षण युक्त है।
2. जीव शाश्वत अर्थात् उत्पत्ति और विनाश रहित है।
3. जीव शुभाशुभ कर्मों का कर्ता है।
4. जीव किये हुए कर्मों (सुख-दुःख) का स्वयं भोक्ता है।
5. भव्य जीव कर्मों को क्षय करके मोक्ष में जाता है।
6. सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप मोक्ष के उपाय हैं।



★ टिप्पणी-

प्रवचन सारोद्धार के अनुसार ग्यारहवें बोल को भावना-6 तथा बारहवें बोल को स्थानक-6 के रूप में संशोधित किया गया है। मूल गाथा इस प्रकार है-

मूलं दारं पइद्धानं, आहारो भायणं निही ।
दुच्छक्कस्सावि धम्मस्स, सम्मत्तं परिकित्तयं ॥
अत्थि य णिच्चो कुणई, कयं च वेएइ अत्थि निव्वाणं ।
अत्थि य मोक्खावाओ, छस्सम्मत्तस्स ठाणाइं ॥

कथा/जीवनी विभाग-

भगवान ऋषभदेव

भूमिका-

भगवान ऋषभदेव इसी युग के अंतिम कुलकर श्री नाभिराजा व मरुदेवी माता के सुपुत्र थे। भगवान ऋषभदेव का बाल्यकाल यौगलिक सभ्यता में गुजरा। कालचक्र बदलने के कारण प्रकृति का वैभव धीरे-धीरे क्षीण होने लगा और जो कल्प वृक्ष थे वे भी फल-फूल कम देने लगे। इधर कल्पवृक्षों का उपयोग करने वाली जनसंख्या में वृद्धि हो रही थी। साधनों की कमी होने से लड़ाई झगड़े होने लगे। शांत युगलिकों के मन में संग्रह बुद्धि पैदा हो गई। भविष्य की चिंता ने सन्तोषवृत्ति व उदारता कम कर दी। निष्क्रिय भोग भूमि से सक्रिय कर्मभूमि के आरम्भ का यह काल था।

राज्य का संचालन-

नाभिराजा ने जन नेतृत्व का भार अपने सुयोग्य पुत्र ऋषभ को सौंप दिया। ऋषभजी ने जनता का नेतृत्व बड़ी कुशलता व योग्यता से किया। मानव जाति के प्रति आपके मन में करुणा थी। आपने जीवनोपयोगी साधनों के उत्पादन और संरक्षण का सब प्रकार से क्रियात्मक उपदेश दिया। वृक्ष को सींचने की, नये वृक्ष लगाने की, अन्न पकाने की, व्यापार करने की, पात्र बनाने की, वस्त्र बनाने की, रोग चिकित्सा की, संतान के पालन पोषण आदि की सब पद्धतियाँ बताईं। गाँव कैसे बसायें, नगरों का निर्माण कैसे करें, गर्मी-सर्दी व वर्षा से बचने के लिये घर कैसे बनायें, ये सारी बातें जनता को सिखाईं। राजा ऋषभदेव के नेतृत्व में सबसे पहली नगरी बसाई जिसका नाम 'विनीता' रखा गया। यही आगे चलकर अयोध्या के नाम से प्रसिद्ध हुई।

ऋषभदेव ने मनुष्यों को असहाय व प्रकृति पर निर्भर रहने के बदले पुरुषार्थ का पाठ पढ़ाया। प्रकृति को नियन्त्रण में रखकर उससे मनचाहा काम लेना सिखाया। आपने स्त्रियों को चौसठ कलाएँ व पुरुषों को बहत्तर कलाएँ भिन्न-भिन्न रूप से सिखलाईं। आप इस युग के प्रथम आदि पुरुष व शिक्षाशास्त्री थे।

ऋषभ का विवाह-

आपके समय विवाह की पद्धति नहीं थी। श्री नाभिराजा व देवराज इन्द्र के परामर्श से सर्वप्रथम आपका विवाह सुमंगला व सुनंदा नाम की कन्याओं के साथ सम्पन्न हुआ। भारतवर्ष में इस युग का यह प्रथम विवाह था। सुमंगला के परम प्रतापी पुत्र भरत हुए। वे भी पिता की ही तरह बड़े ही प्रतिभाशाली और सुयोग्य थे। वे इस वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती राजा हुए।

स्त्री शिक्षा-

दूसरी रानी सुनंदा के पुत्र बाहुबली हुए। वे भी अपने युग के महान् शूरवीर नेता थे। इनका शारीरिक बल अद्वितीय था। इसके अलावा ऋषभदेव के 98 पुत्र और भी थे। उनके दो पुत्रियाँ ब्राह्मी व सुन्दरी भी थीं। ब्राह्मी सुमंगला की पुत्री थी तो सुन्दरी सुनंदा की। दोनों ही बहनों का आपस में बहुत प्रेम था। वे बहुत चतुर व बुद्धिमती कन्याएँ थीं। ऋषभदेव ने अपनी दोनों पुत्रियों को उच्च कोटि का शिक्षण दिया। ब्राह्मी को लिपी अर्थात् अक्षरज्ञान, व्याकरण, छंद, न्याय, काव्य, अलंकार आदि का ज्ञान दिया व सुन्दरी को गणित विद्या का ज्ञान दिया।

आपने सर्वप्रथम अपनी पुत्रियों को शिक्षित बनाया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ऋषभदेव स्त्री शिक्षा को आवश्यक समझते थे। पुत्र व पुत्रियों पर उनका एकसा प्रेम था।

वर्ण व्यवस्था-

आपने कर्म के आधार पर वर्णों की व्यवस्था की। जो लोग अधिक शूरवीर थे, शस्त्र चलाने में कुशल थे, संकट काल में प्रजा की रक्षा कर सकते थे और अपराधियों को दण्ड द्वारा शिक्षा देकर कुशल नागरिक बना सकते थे, उन्हें क्षत्रिय पद दिया। जो व्यापार-व्यवसाय तथा कृषि और पशुपालन आदि में निपुण थे, वे वैश्य कहलाये। जिन्हें सेवा का कार्य सौंपा वे शुद्र कहलाये। चौथे ब्राह्मण वर्ण की स्थापना आपके सुपुत्र भरत ने अपने चक्रवर्ती काल में की। जो लोग अपना जीवन ज्ञानाभ्यास में लगाते, प्रजा को शिक्षा देते व समय-समय पर सन्मार्ग का उपदेश करते, वे ब्राह्मण कहलाये।

संयम स्वीकार-

ऋषभदेव का हृदय प्रारम्भ से ही वैराग्य से परिपूर्ण था। परन्तु वे जन-जन के कल्याण की भावना से संसार में रह रहे थे। मानव जाति को सुव्यवस्थित कर राज्य का भार अपने दोनों सुयोग्य पुत्र भरत व बाहुबली को सौंपकर आपने मुनि दीक्षा अंगीकार की। आपके साथ चार हजार अन्य पुरुषों ने भी दीक्षा ली। दीक्षा लेने के पश्चात् आप एकान्त-निर्जन व सूने वनों में ध्यान लगाकर खड़े रहते। उन दिनों में अखण्ड मौन रखते, किसी से बोलते भी नहीं थे। अतः अन्य साधकों को भिक्षावृत्ति का ज्ञान नहीं हो पाया। भगवान ने एक वर्ष तक आहार नहीं किया। वे अपनी साधना में लीन थे, अतः इन्हें पता नहीं चला कि क्या करें और क्या न करें। कैसे साधु धर्म पालें? आखिर भूख-प्यास, सर्दी आदि से घबराकर ये सब जंगल में कुटिया बनाकर रहने लगे। कंद-मूल तथा वन-फल खाकर गुजारा करने लगे। भारतवर्ष में विभिन्न धर्मों एवं मतों का इतिहास यहीं से प्रारम्भ हुआ। तीन सौ तिरेसठ मत उसी समय से बने।

निर्दोष आहार ग्रहण-

भगवान् ऋषभदेव ने बारह महीने तक निरन्तर निराहार रहकर संयम की साधना की। भयंकर से भयंकर कष्टों को प्रसन्नचित्त से समभावपूर्वक सहन किया। बारह महीने पश्चात् भगवान् का ध्यान अन्य साधकों पर गया कि अहो! मैं तो निराहार रह सकता हूँ पर मेरा अनुकरण करने वाले अन्य साधकों का क्या होगा? अतः अन्य साधकों के मार्ग-प्रदर्शन हेतु मुझे आहार लेना चाहिये। अस्तु, आहार के लिये नगर में प्रवेश किया। लोग आहार दान की विधि से परिचित नहीं थे अतः भगवान् को निर्दोष आहार नहीं मिला। अन्ततोगत्वा हस्तिनापुर के राजकुमार श्रेयांस को जातिस्मरण ज्ञान हुआ और ईख के रस के रूप में भगवान को उन्होंने आहार बहराया। यह संसार-त्यागी मुनियों को आहार-लाभ का प्रथम दिन था- वैशाख शुक्ला तृतीया। जिसे अक्षय तृतीया के रूप में आज भी त्याग-तप के रूप में मनाया जाता है।

केवलज्ञान-

भगवान् ऋषभदेव नाना प्रकार से उग्र तपश्चरण करते हुए आत्मसाधना में लीन रहे। चारों घनघाती कर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान व केवलदर्शन को प्राप्त किया। पश्चात् धर्म का उपदेश दिया और चतुर्विध धर्म-संघ की स्थापना की। भगवान् के प्रथम गणधर चक्रवर्ती भरत के सुपुत्र ऋषभसेन हुए। सबसे प्रमुख आर्यिकाएँ दोनों पुत्रियाँ ब्राह्मी जी तथा सुन्दरी जी हुईं।

निर्वाण-

अन्त में भगवान् ऋषभदेव ने अष्टापद पर्वत पर जाकर छह दिन की तपस्या करके, दस हजार साधुओं के साथ माघकृष्णा त्रयोदशी को निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त किया।

भगवान् ऋषभदेव जैन धर्म की ही नहीं विश्व की विभूति थे। वैदिक धर्म ने भी उन्हें अपना अवतार माना। भगवान् ऋषभदेव को श्रीमद् भागवत (5/4/14) में साक्षात् ईश्वर कहा है। ऋग्वेद, विष्णुपुराण, अग्निपुराण, भागवत पुराण आदि वैदिक साहित्य में भी उनका गुण-कीर्तन आदर के साथ किया गया है।

च्यवन कल्याणक	- आषाढ कृष्णा चतुर्थी।
जन्म कल्याणक	- चैत्र कृष्णा अष्टमी।
दीक्षा कल्याणक	- चैत्र कृष्णा अष्टमी।
केवलज्ञान कल्याणक	- फाल्गुन कृष्णा एकादशी।
निर्वाण कल्याणक	- माघ कृष्णा त्रयोदशी।

कल्याणक तीर्थकरों के ही होते हैं, क्योंकि इनका च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण स्व-पर के लिए कल्याणकारी होते हैं।

शिक्षाएँ-

1. कर्त्तव्य पालन में दृढ़ता रखनी चाहिए।
2. पुरुषों के समान स्त्री जाति को भी सम्मान देते हुए उन्हें आगे बढ़ाना चाहिए।
3. किसी भी कार्य में अन्तराय आने पर दूसरों को दोष नहीं देना चाहिए।
4. विघ्न-बाधाओं को समता भाव से सहन करना चाहिए।



प्रार्थना विभाग-

एक सौ आठ बार परमेष्ठी

एक सौ आठ बार परमेष्ठी, करते हैं नमस्कार ॥१॥
 अरिहन्त कर्म शत्रु विजेता, त्रिजग पूजित तीर्थ प्रणेता ।
 न राग-द्वेष विकार परमेष्ठी, करते हैं नमस्कार ॥१॥
 सिद्धों के सब कर्म खपे हैं, सारे कारज सिद्ध हुए हैं ।
 ज्योति में ज्योति अपार परमेष्ठी, करते हैं नमस्कार ॥२॥
 आचार्य पंचाचार पलाते, संघ शिरोमणि संघ दिपाते ।
 सकल संघ रखवार परमेष्ठी, करते हैं नमस्कार ॥३॥
 उपाध्याय अध्ययन कराते, भ्रांति मिटाते ज्ञान बढ़ाते।
 द्वादशांग आधार परमेष्ठी, करते हैं नमस्कार ॥४॥
 साधु आत्मा अपनी साधे, महाव्रत समिति गुप्ति आराधे ।
 त्याग दिया संसार परमेष्ठी, करते हैं नमस्कार ॥५॥
 पाँच नमन सब पाप प्रणाशक, उत्तम मंगल विघ्नविनाशक।
 भव-भव शांति अपार परमेष्ठी, करते हैं नमस्कार ॥६॥
 हममें भी तुमसे गुण जागें, हम भी परमेष्ठी पद पावें।
 'पारस' हों भवपार परमेष्ठी, करते हैं नमस्कार ॥७॥

रचयिता-श्री पारसमुनि जी म.सा.



अरिहन्त देव का क्या कहना

(तर्ज- दुनिया में देव हजारों हैं....)

दुनिया में देव अनेकों हैं, अरिहन्त देव का क्या कहना।
 उनके अतिशय का क्या कहना, उनके आश्रय का क्या कहना।।टेर।।
 जो दर्शन ज्ञान अनन्ता हैं, जो राग-द्वेष जयवन्ता हैं।
 जो भक्तों के भगवन्ता हैं, उनकी करुणा का क्या कहना।।1।।
 सुर-असुरों से जो पूजित हैं, ऋषि मुनियों से जो वंदित हैं।
 जो तीन लोक के स्वामी हैं, उनकी महिमा का क्या कहना।।2।।
 जो आदि धर्म की करते हैं, भव्यों के भव को हरते हैं।
 जो तिरते और तिराते हैं, ऐसे तीरथ का क्या कहना।।3।।
 पूजा-निन्दा में सम रहते, नित वीतरागता में रमते।
 जहाँ समकित दीप जले नित ही, उनकी समता का क्या कहना।।4।।
 कोई पूजे देव सरागी को, कोई शीष नमाते भोगी को।
 अरिहन्त देव ही देव मेरे, देवाधिदेव का क्या कहना।।5।।
 गौतम से कहते हैं भगवन, दृढ श्रद्धामय हो यह जीवन।
 जो शरण में हैं अरिहन्तों के, उनके मंगल का क्या कहना।।6।।

रचयिता- श्री गौतममुनिजी म.सा.



सामान्य विभाग-

पाँच आचार

आराधन करने अथवा आचरण करने योग्य क्रियाओं को आचार कहते हैं। आचार पाँच प्रकार का बतलाया गया है- (1) ज्ञानाचार, (2) दर्शनाचार, (3) चारित्राचार, (4) तपाचार और (5) वीर्याचार।

(1) ज्ञानाचार- सर्वज्ञों द्वारा प्रतिपादित जिनवाणी का अध्ययन-चिन्तन-मनन निर्धारित समय पर करना, ज्ञानाचार है। इसके आठ भेद इस प्रकार हैं-

1. कालाचार- शास्त्र में जिस समय जो सूत्र पढ़ने की आज्ञा है, उसे उस समय ही पढ़ना।
2. विनयाचार- ज्ञानदाता गुरु का विनय करना।
3. बहुमानाचार- ज्ञानी और गुरु के प्रति हृदय में भक्ति और श्रद्धा का भाव रखना।
4. उपधानाचार- ज्ञान सीखते हुए यथाशक्ति तप करना।
5. अनिह्नवाचार- ज्ञान पढ़ाने वाले गुरु का नाम नहीं छिपाना।
6. व्यंजनाचार- सूत्र के पाठ का शुद्ध उच्चारण करना।

7. अर्थाचार- सूत्र का शुद्ध एवं सही अर्थ करना।

8. तदुभयाचार- सूत्र और अर्थ (दोनों) को शुद्ध पढ़ना और समझना।

(2) दर्शनाचार- श्रद्धान को निर्मल बनाये रखना, सम्यक्त्व के अतिचारों से अपने आपको बचाये रखना और क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति करना दर्शनाचार है। इसके आठ भेद इस प्रकार हैं-

1. निःशंकित- वीतराग सर्वज्ञ के वचनों में संदेह नहीं करना।

2. निःकांक्षित- परदर्शन (मिथ्यामत) की इच्छा नहीं करना।

3. निर्विचिकित्सा- धर्म-क्रिया के फल के विषय में सन्देह नहीं करना।

4. अमूढदृष्टि- पाखण्डियों (मिथ्यामत) का आडम्बर देख कर उससे मोहित नहीं होना।

5. उपबृंह- गुणी पुरुषों को देखकर उनके गुणों की प्रशंसा करना तथा स्वयं भी उन गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना।

6. स्थिरीकरण- धर्म से डिगते प्राणी को धर्म में स्थिर करना।

7. वात्सल्य- अपने धर्म और साधर्मियों से प्रेम करना।

8. प्रभावना- वीतराग-प्ररूपित धर्म की उन्नति करना, प्रचार करना तथा कृष्ण वासुदेव और श्रेणिक राजा के समान धर्म की प्रभावना (प्रकाशित) करना।

(3) चारित्राचार- आत्मा पर लगे कर्ममल से आत्मा को अलग करना, नये बन्धने वाले कर्मों को, आश्रवों को रोकना, संयम का पालन करना, चारित्राचार है। इसके भी आठ भेद इस प्रकार हैं-

1. ईर्या समिति- कार्य उत्पन्न होने पर विवेकपूर्वक गमन करना तथा दूसरे जीवों को किसी प्रकार की हानि नहीं हो, इस प्रकार उपयोगपूर्वक चलना- 'ईर्या समिति' है।

2. भाषा समिति- आवश्यक होने पर निरवद्य (निर्दोष) वचन की प्रवृत्ति करना- 'भाषा समिति' है।

3. एषणा समिति- बयालीस दोषों को टाल कर निर्दोष भिक्षादि ग्रहण करना- 'एषणा समिति' है।

4. आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति- भाण्ड- वस्त्र, पात्र, पुस्तकें आदि उपकरणों के लेने में और रखने में प्रतिलेखन और प्रमार्जना की निर्दोष प्रवृत्ति- 'आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति' है।

5. उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंघाण-जल्ल परिस्थापनिका समिति- परठने के योग्य उच्चारदि किसी भी वस्तु के परठने में स्थण्डिल के दस दोषों को टालकर प्रवृत्ति करना- 'उच्चार (मल), प्रस्रवण (मूत्र) खेल (कफ), सिंघाण (नाक का मेल), जल्ल (पसीना) परिस्थापनिका समिति' है।

6. मन गुप्ति- मन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना 'मन गुप्ति' है।

7. वचन गुप्ति- वचन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना 'वचन गुप्ति' है।

8. काय गुप्ति- काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना 'काय गुप्ति' है।

(4) तपाचार- कर्म मैल से मलिन आत्मा को तप रूपी अग्नि में तपाकर शुद्ध करना, अपना असली आत्म-स्वरूप प्राप्त करना तपाचार है। इसके बारह भेद हैं-

बाह्य तप के 6 भेद

1. **अनशन-** चार प्रकार के या तीन प्रकार के आहार का त्याग करना।
2. **ऊनोदरी-** भोजन की अधिक रुचि होने पर भी कम भोजन करना।
3. **भिक्षाचर्या-** शुद्ध आहार आदि की गवेषणा करना।
4. **रसपरित्याग-** विगयादि का त्याग करना, स्वाद पर विजय करना।
5. **कायक्लेश-** वीर आसन आदि कष्टप्रद क्रिया करना।
6. **प्रतिसंलीनता-** इन्द्रियों को वश में करना तथा कषाय और योगों को रोकना।

आभ्यन्तर तप के 6 भेद

7. **प्रायश्चित्त-** लगे हुए दोषों की आलोचना करके प्रायश्चित्त लेकर आत्मा को शुद्ध करना।
8. **विनय-** गुरु आदि का भक्तियुक्त अभ्युत्थानादि से आदर, सत्कार एवं विनय करना।
9. **वैयावृत्य-** आचार्यादि की सेवा करना।
10. **स्वाध्याय-** शास्त्र की वाचना, पृच्छना आदि करना।
11. **ध्यान-** मन को एकाग्र करके शुभ विचारों में लगाना।
12. **व्युत्सर्ग-** काया के व्यापार का त्याग करना।

(5) **वीर्याचार-** निरन्तर ज्ञान में, ध्यान में, तप में, संयम में और सदुपदेश आदि धर्मवृद्धि-आत्मशुद्धि के प्रत्येक कार्य में उद्यत रहकर अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य को इन्हीं कार्यों में लगाये रखना वीर्याचार है। इसके 3 भेद इस प्रकार हैं- 1. धर्म के कार्य में बल-वीर्य को छिपावे नहीं, 2. पूर्वोक्त आचार के 36 भेदों में उद्यम करे और 3. शक्ति अनुसार धर्म कार्य करें।



बारह भावना के दोहे

अनित्य भावना

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार ।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ॥1॥

अशरण भावना

दल बल देवी देवता, मात - पिता परिवार ।
मरती विरियाँ जीव को, कोई न राखन हार ॥2॥

संसार भावना

दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान ।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ॥3॥

एकत्व भावना

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय ।
यो कबहूँ या जीव को, साथी सगो न कोय ॥4॥

अन्यत्व भावना

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय ।
घर सम्पत्ति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय ॥5॥

अशुचि भावना

दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पीजरा देह ।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह ॥6॥

आस्रव भावना

जगवासी घूमे सदा, मोह - नीद के जोर ।
सब लूटें नहीं दीसता, कर्म चोर चहूँ ओर ॥7॥

संवर भावना

मोह-नीद जब उपशमे, सत् गुरु देय जगाय ।
कर्म चोर आवत रुके, तब कुछ बने उपाय ॥8॥

निर्जरा भावना

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर ।
या विधि बिन निकसे नहीं, पैठे पूरब चोर ॥

पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार ।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ॥9॥

लोक भावना

चौदह राजु उत्तंग नभ, लोक पुरुष संठान ।
ता में जीव अनादि ते, भरमत हैं बिन ज्ञान ॥10॥

बोधि-दुर्लभ भावना

धन जन कंचन राज सुख, सबहि सुलभ कर जान ।
दुर्लभ है संसार में, एक यथार्थ ज्ञान ॥11॥

धर्म भावना

जाचे सुर तरु देय सुख, चिन्तित चिंता रैन ।
बिन जाचे बिन चिंतिये, धर्म सदा सुख दैन ॥12॥

वन्दना- अर्थ एवं भेद

वन्दना का अर्थ है- विनम्र भाव से, बहुमान पूर्वक पंच परमेष्ठी आदि गुणवान् पुरुषों को मन-वचन एवं काया की अर्पणता पूर्वक नमस्कार करना।

वन्दना से लाभ-

वन्दना द्वारा आत्मा नीचगोत्र रूप बन्धे हुए कर्म का क्षय करता है और उच्चगोत्र कर्म को बाँधता है। उसकी वाणी में इतना निखार आ जाता है कि सभी उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। साथ ही वन्दना से लोकप्रियता प्राप्त होती है।

वन्दना के भेद-

वन्दना के मुख्य रूप से तीन भेद होते हैं- (1) जघन्य वन्दना, (2) मध्यम वन्दना, और (3) उत्कृष्ट वन्दना।

(1) **जघन्य वन्दना-** स्थानक अथवा उपाश्रय में प्रवेश करने पर प्रथम दृष्टि में सन्त-सती दिखाई देने पर, रास्ते में विहार में चल रहे हों अथवा गौचरी-पानी हाथ में लेकर आ जा रहे हों, इत्यादि प्रसंगों पर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर 'मत्थएण वंदामि' बोलकर वन्दन करना जघन्य वन्दना कहलाती है।

(2) **मध्यम वन्दना-** पंचपरमेष्ठी को तिव्खुत्तो के पाठ से तीन बार विधि सहित आवर्तन देते हुए वन्दन करना मध्यम वन्दना कहलाती है। इसमें तिव्खुत्तो शब्द के उच्चारण के साथ ही दोनों हाथ ललाट के बीच में रखने चाहिए। आयाहिणं शब्द के उच्चारण के साथ ही अपने दोनों हाथ अपने ललाट के बीच में से अपने स्वयं के दाहिने (Right) कान की ओर ले जाते हुए गले के पास से होकर बायें (Left) कान की ओर घुमाते हुए पुनः ललाट के बीच में लाना चाहिए। इस प्रकार से एक आवर्तन पूरा करना चाहिए। इसी प्रकार पयाहिणं और करेमि शब्द बोलते हुए भी एक-एक आवर्तन पूरा करना चाहिए। इस प्रकार तिव्खुत्तो का पाठ एक बार बोलने में तीन आवर्तन देने चाहिए। तीनों बार तिव्खुत्तो के पाठ से इसी प्रकार तीन-तीन आवर्तन देने चाहिए। 'वंदामि' बोलने के साथ ही दोनों हाथ जोड़कर नीचे बैठे तथा 'नमंसांमि' बोलते समय पंचांग झुकाकर वन्दन करना तथा 'मत्थएण वंदामि' बोलने पर पुनः पंचांग झुकाकर वन्दना करनी चाहिये। यह वन्दना, सामायिक-प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रिया की आज्ञा लेते समय, प्रश्नादि पूछते समय, प्रवचन, आगम वॉचनी आदि श्रवण करने से पूर्व तथा पश्चात् करनी चाहिये।

(3) **उत्कृष्ट वन्दना-** यह वन्दना, षडावश्यक अर्थात् प्रतिक्रमण करते समय 'इच्छामि खमासमणो' के पाठ से की जाती है। तृतीय वन्दना आवश्यक में गुरुदेव के प्रति हुई तैतीस प्रकार की आशातना की क्षमायाचना इसी पाठ से की जाती है। इस पाठ में तप-संयम की बाधा रहित यात्रा चलने की मंगल कामना तथा मन-वचन-काया के क्रोध, मान, माया, लोभ आदि किसी भी निमित्त से अविनय आशातना हुई हो तो शिष्य गुरुदेव से अन्तर्मन से विस्तार पूर्वक क्षमायाचना करते हुए उन्हें वन्दना करता है, इस कारण से इसे उत्कृष्ट वन्दना कही जाती है। इस वन्दना में इच्छामि खमासमणो का पाठ दो बार बारह आवर्तन देते हुए बोला जाता है।



जैन धर्म एवं पर्यावरण

हमारे चारों ओर जो कुछ है वह हमारा पर्यावरण है। परि. आवरण अर्थात् चारों ओर जिससे हम घिरे हुए हैं वह पर्यावरण है। यह चेतन भी है और अचेतन भी। प्राकृतिक भी है और कृत्रिम भी।

जैन पारिभाषिक शब्दावली में कहें तो छः द्रव्यों में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय एवं काल द्रव्य भी पर्यावरण के अंग हैं, किन्तु उनकी सामान्य भूमिका है, उनका पर्यावरण प्रदूषण में कोई योगदान नहीं होता। प्रदूषण जीवास्तिकाय एवं पुद्गलास्तिकाय के द्वारा ही होता है इनमें भी जीवास्तिकाय की भूमिका विशेष है। वह पुद्गल के प्राकृतिक वातावरण को भी दूषित करने में नहीं चूकता। जीवास्तिकाय में भी मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो पर्यावरण को प्रदूषित करने में अग्रणी है। वह चेतन एवं अचेतन दोनों प्रकार के पर्यावरण को प्रदूषित करता रहता है।

जल प्रदूषण- जो पर्यावरण जीवित प्राणियों के जीवन पर खतरा उत्पन्न करता है वह प्रदूषित पर्यावरण है। मनुष्य पर्यावरण के प्रति तब चिन्तित होता है जब उसके जीवन को खतरा उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए हम जल-प्रदूषण को लें। भारत की गंगा, यमुना जैसी पवित्र नदियां आज किस प्रकार औद्योगिक संस्थानों से निकलने वाले कचरे, गन्दे नालों से पहुँचे पानी, मृत शवों, प्लास्टिक आदि से तथा घरों से फेके गये कचरे आदि से मलिन होती जा रही हैं। इन नदियों का जल कई शहरों में पीने योग्य नहीं रह गया है। उसके पीने से विविध बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं। जल प्रदूषित मनुष्य ने ही किया है जो कि मानवजाति के साथ पानी में रहने वाले जीवों तथा पशु-पक्षियों के लिए भी खतरा बन गया है।

वायु प्रदूषण:- अनेक औद्योगिक इकाइयों एवं वाहनों से निकलने वाले धुएँ से शुद्ध श्वास लेने में कठिनाई उत्पन्न हो रही है। कार्बन डॉइ ऑक्साइड की बढ़ती मात्रा मानव-जाति एवं अन्य कई प्राणियों के जीवन के लिये अभिशाप है। कई शहर वायु-प्रदूषण में अग्रणी हैं। सरकार भी इससे चिन्तित है। इस प्रदूषण को कम करने में पेड़-पौधों की महती भूमिका है। पीपल का पेड़ दिन रात आक्सीजन देता है। वह कार्बनडाईऑक्साइड ग्रहण करता है। नीम भी दिनभर आक्सीजन देता है तथा कार्बनडाईऑक्साइड को ग्रहण करता है। तुलसी के पौधे की पर्यावरण शुद्धि में विशेष भूमिका रही है अतएव इन पौधों की सुरक्षा कर पर्यावरण शुद्धि में हम अपनी महती भूमिका निभा सकते हैं।

ध्वनि प्रदूषण- सड़क-वाहन, रेलयान एवं वायुयान से तो ध्वनि प्रदूषण होता ही है, घरों में तेज आवाज में चलने वाले टी.वी. एवं कम्प्यूटर भी ध्वनि-प्रदूषण को बढ़ा रहे हैं। यह प्रदूषण भी मानव के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इससे विशेषकर सुनने की शक्ति निरन्तर कम होती जाती है।

अन्य प्रदूषण- (A) यूरिया आदि खाद के द्वारा मनुष्य उपजाऊ मिट्टी को बंजर बना रहा है तथा विभिन्न कीटनाशकों का प्रयोग करके फल एवं सब्जियों में विष पहुँचा रहा है, जो स्वास्थ्य लाभ के स्थान पर कैंसर जैसे रोगों की उत्पत्ति के हेतु बन रहे हैं। खाद्य-सामग्री पर तो मानो प्रदूषण का आक्रमण ही हो गया है। (B) मसाले, तेल, घी, दूध आदि सब मिलावटी मिल रहे हैं। यह प्रदूषण मानव-मन की विकृति के द्योतक हैं। स्वार्थ एवं लोभ इस प्रदूषण को बढ़ाते हैं। शुद्ध दूध मिलना कठिन हो गया है। उसमें भी यूरिया जैसे पदार्थों का मिश्रण किया जा रहा है। (C) प्लास्टिक ने मानो प्रदूषण पर धावा बोल दिया है। बाजार में हर पदार्थ प्लास्टिक-पैक में मिल रहा है, जो स्वास्थ्य के लिए भी

हानिकारक है यह न तो गलता है और न नष्ट होता है और इसे जलाये तो हवा को दूषित कर देता है तथा सड़क पर फेंक दो तो नालियाँ रुक जाती हैं और खाद्य-सामग्री के साथ फेंक दो तो गाय, भैंस जैसे पशु उसे खाकर शीघ्र काल कवलित हो जाते हैं। राजस्थान सरकार ने अभी प्लास्टिक थैलियों पर रोक लगायी है लेकिन दूध तथा अन्य वस्तु की पैकिंग में इस पर रोक नहीं लगी है। इनका कम से कम उपयोग कर पर्यावरण शुद्धि में हमारी अच्छी भूमिका हो सकती है। (D) भूमि का बेतहाशा खनन हो रहा है। उसका दोहन नहीं शोषण हो रहा है, जिससे भूकम्प की स्थितियाँ भी बन रही हैं। (E) देश में चल रहे कल्लखाने भी पर्यावरण - प्रदूषण एवं अनेक रोगों के कारण बन रहे हैं।

पर्यावरण की शुद्धि में हमारा योगदान-

स्वस्थ जीवन के लिए स्वच्छ एवं शुद्ध पर्यावरण आवश्यक है। पर्यावरणविद एवं विश्वहितैषी आज सम्पूर्ण पृथ्वी पर व्याप्त प्रदूषण से चिन्तित हैं। पृथ्वी को बचाने के लिए शिखर सम्मेलन हो रहे हैं। विश्व आज ग्लोबल वार्मिंग की समस्या से जूझ रहा है।

पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त रखने में प्रत्येक व्यक्ति की भागीदारी आवश्यक है। मनुष्य ही प्रदूषण पर नियन्त्रण कर सकता है। वह आस-पड़ोस में, नगर में एवं राष्ट्र में जागरूकता ला सकता है। सुख-सुविधा के भोग की अभिलाषा पर नियन्त्रण तथा मन के विकारों पर विजय पर्यावरण - प्रदूषण को दूर करने में सहायक है।

जैन धर्म में प्रतिपादित अहिंसा, अपरिग्रह, भोगोपभोग परिमाणव्रत, अनर्थदण्ड-विरमणव्रत आदि ऐसे व्रत हैं जो आन्तरिक शुद्धि के साथ बाह्य पर्यावरण को भी काफी अंशों तक प्रदूषण मुक्त रख सकते हैं। 1. जैन धर्म में पेड़-पौधों को काटने, लकड़ी बेचने, जंगल में आग लगाने जैसे धंधों का निषेध है, जो पर्यावरण के प्रति जैन धर्म जागरूकता को सूचित करते हैं। 2. वनस्पति में जीवन स्वीकार करने के कारण अकारण उसकी हिंसा करना जैन धर्म में मना है। 3. इसी प्रकार जल का उपयोग यथासम्भव सीमित रूप में किया जाना चाहिए। आज जल का संकट है। जल को बचाना भी पर्यावरण को बचाने में सहायक है। 4. जैन धर्म में जो 'यतना' का सिद्धान्त है वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। जिस किसी भी वस्तु का उपयोग करें, पूर्ण जागरूकता के साथ करें। सतत जागरूकता रहने पर हमारा पर्यावरण प्राणिमात्र के लिये तो उपयोगी बनता ही है, साथ ही विश्व में शान्ति एवं प्रेम बढ़ाने में भी सहायक बनता है।



अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : तृतीय - जैन धर्म प्रथमा (परीक्षा 16 जुलाई, 2017)

समय : 3 घण्टे

अंक : 100

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :-

10x1=(10)

- (a) "इच्छामि ठामि काउस्सग्गं" पद का कायोत्सर्ग में उच्चारण किया जाता है -
(क) इच्छामि ठामि काउस्सग्गं (ख) इच्छामि ठामि आलोउं
(ग) इच्छामि आलोउं (घ) इच्छामि पडिक्कमिउं (ग)
- (b) जिस कर्म के उदय से जीव गति, जाति आदि प्राप्त करता है, वह कर्म है -
(क) नाम कर्म (ख) गोत्र कर्म
(ग) वेदनीय कर्म (घ) अंतराय कर्म (क)
- (c) मिथ्यादृष्टि से विशेष भाषण न करना कहलाता है -
(क) आलाप (ख) संलाप
(ग) पर-पाखण्डी प्रशंसा (घ) पर पाखण्डी संस्तव (ख)
- (d) भगवान ऋषभदेव को प्रथम पारणा कराया -
(क) श्रेयांस ने (ख) शंख राजा ने
(ग) जिनदास सेठ ने (घ) भरत चक्रवर्ती ने (क)
- (e) भगवान ऋषभदेव की कुल संताने थीं -
(क) 100 (ख) 98
(ग) 102 (घ) 99 (ग)
- (f) अपने धर्म और साधर्मियों से प्रेम करना कहलाता है-
(क) उपबृंह्वा (ख) वात्सल्य
(ग) प्रभावना (घ) निर्विचिकित्सा (ख)
- (g) आचार्य के प्रति हुई आशातना की क्षमायाचना करने का पाठ है-
(क) तिक्खुत्तो (ख) मत्थएण वंदामि
(ग) इच्छामि खमासमणो (घ) संलेखना (ग)
- (h) जीवास्तिकाय का गुण है -
(क) उपयोग गुण (ख) वर्तन गुण
(ग) चलन गुण (घ) विध्वंसन गुण (क)
- (I) "करुँ नहीं-अनुमोदुँ नहीं मनसा" यह भंग किस नम्बर का है -
(क) 25 वाँ (ख) 38 वाँ
(ग) 42 वाँ (घ) 36 वाँ (क)
- (j) आत्म-शुद्धि का पाठ है -
(क) इच्छाकारेणं (ख) तस्स उत्तरी
(ग) लोगस्स (घ) करेमिभंते (ख)

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- 10x1=(10)

- (a) जो कृषि और पशुपालन आदि में निपुण थे, वे वैश्य कहलाये। (हाँ)
- (b) निर्जरा शरीर को शुद्ध करने की आध्यात्मिक क्रिया है। (नहीं)
- (c) सूत्र के पाठ का शुद्ध उच्चारण करना व्यंजनाचार है। (हाँ)
- (d) दुष्ट आचरण का चिंतन करना आर्त्तध्यान है। (नहीं)
- (e) मोक्ष की तीव्र इच्छा करना निर्वेद है। (नहीं)
- (f) चारित्र के 75 अतिचार होते हैं। (हाँ)
- (g) "अधिकरण जोड़ रखा हो" दसवें व्रत का अतिचार है। (नहीं)
- (h) "नमंसाभि" बोलते हुए पंचांग झुकाकर वंदना करनी चाहिए। (हाँ)
- (i) सामायिक एक प्रकार का आध्यात्मिक व्यायाम है। (हाँ)
- (j) धर्मास्तिकाय लोकालोक व्यापी है। (नहीं)

प्र.3 मुझे पहचानो :- 10x1=(10)

- (a) मेरे दस दण्डक हैं। भवनपति
- (b) मेरा दूसरा नाम पुष्पदंत भी है। सुविधिनाथ
- (c) मैं प्रथम मंगल हूँ। नवकार मंत्र
- (d) मैं जानने योग्य हूँ, परन्तु आचरण करने योग्य नहीं। कर्मादान
- (e) मेरे द्वारा संज्ञी जीवों के मनोगत भावों को जाना जाता है। मनःपर्यव ज्ञान
- (f) मैं एक ऐसी आत्म विकास की सीढ़ी हूँ, जिसे प्राप्त करने वाले ही तीर्थंकर बनकर चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं। सयोगी केवली गुणस्थान
- (g) मेरा उदय न होना सम है। अनन्तानुबंधी कषाय
- (h) मुझे मेरे पिता ने गणित विद्या का ज्ञान दिया। सुंदरी
- (i) मुझसे जीव उच्च गोत्र कर्म बाँधता है। वंदना
- (j) मैं एक ऐसा प्रदूषण हूँ, जिसके द्वारा सुनने की शक्ति निरंतर कम होती जाती है। ध्वनि-प्रदूषण

प्र.4 निम्न प्रश्नों के उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए।

14x2=(28)

(a) 24 दण्डकों में से तिर्यच के कौन-कौन से दण्डक हैं ?

उ- 5 स्थावर के 5 दण्डक, 3 विकलेन्द्रिय के 3, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का 1, इस प्रकार कुल 9 दण्डक हैं।

(b) शुद्धि किसे कहते हैं व कितने प्रकार की होती हैं ?

उ- विकृत श्रद्धा के निराकरण के प्रयत्न को 'शुद्धि' कहते हैं।

शुद्धि के प्रकार- 1 मनशुद्धि 2 वचन शुद्धि 3 काय-शुद्धि।

(c) 11वें व्रत के प्रथम दो अतिचार लिखिए।

उ- 1 पौषध में शय्या संथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो।

2 प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो।

(d) अंतिम पाँच कर्मादान के नाम लिखिए।

उ- 1 जंतपीलणकम्मे, 2 निलंछणकम्मे, 3 दवग्गिदावणया,

4 सर दह तलाय सोसणया एवं 5 असई जण पोसणया।

(e) उपयोग आत्मा किसे कहते हैं ?

उ- जब आत्मा में जानने और देखने की प्रवृत्ति विशेष रूप से होती है, तब उस आत्मा को 'उपयोग आत्मा' कहा जाता है। यह आत्मा सिद्ध व संसारी सभी जीवों में पाई जाती है।

(f) ध्यान को परिभाषित कीजिए।

उ- मन, वचन और काय को किसी एक विषय पर एकाग्र करना अथवा केन्द्रित करना 'ध्यान' कहलाता है। अन्तर्मुहूर्त के लिए किसी एक विषय के बारे में एकाग्र होकर चिंता निरोध करना 'ध्यान' कहलाता है।

(g) भरत चक्रवर्ती, बाहुबली, ब्राह्मी व सुन्दरी की माताओं के नाम लिखिए।

उ- भरत चक्रवर्ती - सुमंगला बाहुबली- सुनन्दा

ब्राह्मी-सुमंगला सुन्दरी - सुनन्दा

(h) प्रतिसंलीनता क्या है ?

उ- प्रतिसंलीनता-इन्द्रियों को वश में करना तथा कषाय और योगों को रोकना।

(i) मध्यम वंदना कब करनी चाहिए ?

उ- यह वंदना, सामायिक-प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रिया की आज्ञा लेते समय, प्रश्नादि पूछते समय,

प्रवचन, आगम वॉचनी आदि श्रवण करने से पूर्व तथा पश्चात् करनी चाहिए।

(j) जैन धर्म में ऐसे कौन-कौन से व्रत हैं जो पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त कर सकते हैं ?

उ- अहिंसा, अपरिग्रह, भोगोपभोग, परिमाणव्रत, अनर्थदण्ड-विरमणव्रत आदि।

(k) राजा राणा अपनी बार। रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

उ- राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।

मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार।।

(l) पूजा निंदा क्या कहना। रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

उ- पूजा-निंदा में सम रहते, नित वीतरागता में रमते।

जहाँ समकित दीप जले नित ही, उनकी समता का क्या कहना।।

(m) आचार्य नमस्कार। रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

उ- आचार्य पंचाचार पलाते, संघ शिरोमणि संघ दिपाते।

सकल संघ रखवार परमेष्ठी, करते हैं नमस्कार।।

(n) परमत्थ सद्वहणा। रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

उ- परमत्थ संथवो वा, सुदिदु परमत्थ सेवणा वावि।

वावण्ण कुदंसण वज्जणा, य सम्मत सद्वहणा।।

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में लिखिए :-

14x3=(42)

(a) छट्टे व्रत के अतिचार लिखिए।

उ- 1 ऊँची, 2 नीची, 3 तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4 क्षेत्र बढ़ाया हो, 5 क्षेत्र का परिमाण भूल जाने से, पथ संदेह पड़ने पर आगे चला हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस संबन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(b) श्वासोच्छ्वास बल प्राण किसे कहते हैं ?

उ- श्वासोच्छ्वास वर्गणा के पुद्गलों की सहयता से श्वास लेने और बाहर निकालने की शक्ति विशेष को 'श्वासोच्छ्वास' बल प्राण कहते हैं।

(c) अमूढ दृष्टि, उपबृंह व उपधानाचार का अर्थ लिखिए।

उ- अमूढदृष्टि- पाखण्डियों (मिथ्यामत) का आडम्बर देख कर उससे माहित नहीं होना।

उपबृंह- गुणी पुरुषों को देखकर उनके गुणों की प्रशंसा करना तथा स्वयं भी उन गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना।

उपधानाचार- ज्ञान सीखते हुए यथाशक्ति तप करना।

(d) वीर्याचार को परिभाषित कीजिए।

उ- निरन्तर ज्ञान में, ध्यान में, तप में, संयम में और सदुपदेश आदि धर्मवृद्धि- आत्मशुद्धि के प्रत्येक कार्य में उद्यत रहकर अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य को इन्हीं कार्यों में लगाये रखना वीर्याचार है।

(e) “पर्यावरण प्रदूषण में जीवास्तिकाय की भूमिका विशेष है” कैसे ?

उ- प्रदूषण जीवास्तिकाय एवं पुद्गलास्तिकाय के द्वारा ही होता है, इनमें भी जीवास्तिकाय की भूमिका विशेष है। वह पुद्गल के प्राकृतिक वातावरण को भी दूषित करने में नहीं चूकता। जीवास्तिकाय में भी मनुष्य ही एक ऐसा प्राणि है जो पर्यावरण को प्रदूषित करने में अग्रणी है। वह चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के पर्यावरण को प्रदूषित करता है।

(f) भावना को परिभाषित कर भेदों के नाम लिखिए।

उ- विविध विचारों से समकित में दृढ़ होना ‘भावना’ है।

1 समकित, धर्म रूपी वृक्ष का मूल है।

2 समकित, धर्म रूपी नगरी का दरवाजा है।

3 समकित, धर्म रूपी प्रासाद की नीव है।

4 समकित, धर्म रूपी आभूषणों की पेट्टी है।

5 समकित, धर्म रूपी वस्तुओं की दुकान है।

6 समकित, धर्म रूपी भोजन का थाल है।

(g) भगवान ऋषभदेव के पंचकल्याणक कब-कब हुए ?

उ- च्यवन कल्याणक - आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी।

जन्म कल्याणक - चैत्र कृष्णा अष्टमी।

दीक्षा कल्याणक - चैत्र कृष्णा अष्टमी।

केवलज्ञान कल्याणक - फाल्गुन कृष्णा एकादशी।

निर्वाण कल्याणक - माघ कृष्णा त्रयोदशी।

(h) वादी प्रभावक व विद्यावान प्रभावक को समझाइए।

उ- वादी प्रभावक- प्रत्यक्ष हेतु दृष्टांत पूर्वक अन्यमतियों से वाद करके धर्म को दीपाने में चतुर होवें।

विद्यावान प्रभावक- अनेक विद्याओं का जानकार होकर धर्म की उन्नति करें-चमकावें।

(i) परिहार विशुद्धि चारित्र की साधना किस प्रकार होती है ? संक्षिप्त में लिखिए।

- उ- कर्मों का विशेष रूप से त्याग करने, अलग हटाने तथा आत्मा को शुद्ध बनाने हेतु नौ मुनि जिस चारित्र की एक साथ आराधना करते हैं। उसे परिहारविशुद्धि चारित्र कहते हैं। इनमें कम से कम 18 माह का समय लगता है। इस चारित्र की आराधना के लिए जघन्य कुछ कम दस पूर्व तथा उत्कृष्ट परिपूर्ण दस पूर्व का ज्ञान होना आवश्यक है।
- (j) निवृत्ति बादर गुणस्थान को समझाइए।
- उ- निवृत्ति का अर्थ है- भिन्नता और बादर का अर्थ है- स्थूल कषाय। इस गुणस्थान में समान समय वाले जीवों के परिणामों में अंतर होता है, तथा बादर कषाय विद्यमान रहती है, इसलिये इसे 'निवृत्ति बादर गुणस्थान' कहते हैं।
- (k) ज्ञान दीप निर्जरा सार। रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।
- उ- ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसे नहीं, पैटे पूरब चोर।।
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार।।
- (l) नील लेश्या को परिभाषित कीजिए।
- उ- जो जीव हिंसा, झूठ, चोरी आदि पाप प्रवृत्तियों में लगे रहते हैं। बहुत समझाने पर उन प्रवृत्तियों में थोड़ी कमी ला पाते हैं। जो धार्मिक भावना से कोसों दूर रहते हैं, ऐसे जीवों के परिणाम 'नील लेश्या' वाले होते हैं।
- (m) हीणक्खरं..... न सज्जायं। रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।
- उ- हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्टुदिण्णं, दुट्टुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्जाओ, काले न कओ सज्जाओ, असज्जाइए सज्जायं, सज्जाइए न सज्जायं।
- (n) "वायु प्रदूषण को कम करने में पेड़-पौधों की महती भूमिका है।" समझाइए।
- उ- पीपल का पेड़ दिन-रात आक्सीजन देता है। वह कार्बनडाईऑक्साइड को ग्रहण करता है। तुलसी के पौधों की पर्यावरण शुद्धि में विशेष भूमिका रही है अतएव इन पौधों की सुरक्षा कर पर्यावरण शुद्धि में हम अपनी महती भूमिका निभा सकते हैं।